आर्य समाज के नियम

१. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसकी ही उपासना करने योग्य है।

३. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहे।

भूमिका

योग का अभ्यास सभी कर सकते हैं। सभी देशों में किया जा सकता है, सभी कालों में किया जा सकता है। नर, नारी, युवा, वृद्ध सभी कोई करें। क्योंकि सभी का लक्ष्य समान ही है। सभी तो स्वभाव से ही दुःख नहीं चाहते। इसके विपरीत सभी सुख चाहते हैं। और इसी के लिये सभी प्रयत्न भी होते हैं। परन्तु योग के नाम पर बहुत ही भ्रान्त धारणायें फैली हुई हैं। इसका स्वरूप भी अत्यन्त जटिल बना दिया है, जिससे इस ओर प्रयत्न नहीं करते हैं। योग अनेक प्रकार के हैं ऐसा ही आज वर्तमान में प्रचलित है। जैसे धर्म अनेक माने जाते हैं, ईश्वर पर भी मतएक्य नहीं। न ही एक जाति मानते हैं इस कारण मनुष्य समाज, धर्म, ईश्वर व जाति के नाम पर अनेक हिस्सों में बँट गया है। जो दुःख हटाने व सुख पाने के साधन थे, उन्हीं के द्वारा दुःख बढ़ाने व सुख घटाने का कार्य हो रहा है। योग को भी इसी प्रकार बना दिया है। हठयोग, सहजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग आदि आदि कितने ही योग प्रचलित हैं और आसन, व्यायाम व प्राणायाम आदि करके रोगों को हटाना भी योग मानते हैं। यह सत्य है कि शरीर स्वस्थ हो तो साधना योग भी ठीक प्रकार से होती है। पर साधन को ही कोई साध्य मान लेवे, तब तो अर्थ का अनर्थ ही हो जायेगा। योग का जो प्रतिपादन महर्षि पतञ्जलिजी ने किया है उसका यथार्थ व्यवहारिक स्वरूप क्या है उसका मार्गदर्शन वेद आदि सत्य ग्रन्थों के आधार पर इस लघु पुस्तिका में दिया जा रहा है जिससे सभी जन इसके आचरण से लाभ उठा सकें, इसी भावना से प्रभु कृपा से यह सब लिखा जा रहा है।

– स्वामी अमृतानन्द सरस्वती

कोई भी मनुष्य किसी भी प्रकार के कार्य को करे परन्तु यदि उसको उचित ज्ञान नहीं है तो फल भी इच्छित नहीं मिल सकता। अतः सर्वप्रथम ज्ञान शुद्ध होना आवश्यक है। व्यक्तिगत रूप से कोई व्यक्ति अकेला कहीं जा रहा है और मार्ग भटक गया तो उसका फल उस व्यक्ति को ही मिलेगा। पर यदि उस व्यक्ति के पीछे परिवार के व्यक्ति भी चल रहे हों तो उन्हें भी भटकाव का दुःख भोगना पड़ेगा। इसी प्रकार कोई राष्ट्र का नायक हो और वह भूल करे तो उसका प्रभाव पूरे राष्ट्र पर होगा। विश्व का नेता हो तो प्रभाव भी विश्व पर होगा पूरा विश्व भोग रहा है। उसको देखते हैं वह भटकाव कैसा है? अब किसी से भी प्रश्न पूछें कि आप मनुष्य हो अथवा नहीं तो वह तत्काल उत्तर देगा मैं मनुष्य हूँ। इसी प्रकार किसी नवजात बालक के मातापिता से पूछा जाये कि जो यह बालक है वह मनुष्य है या नहीं तो वह भी कहेगा कि वह मनुष्य है। पर परमात्मा की वाणी वेद में कहा गया है कि **"मनुर्भव" मनुष्य बन**। इसका परोक्ष रूप में अर्थ हुआ कि जन्म से मनुष्य नहीं होता। मनुष्य बनना होता है।

अतः निष्पक्ष होकर विचार करते हैं कि मनुष्य बनना होता है या बना हुआ रहता है? मनुष्य शरीर से पृथक् जितने भी शरीरधारी जीव हैं उन्हें कुछ बनना नहीं होता, उनमें स्वाभाविक ज्ञान विशेष होता है। उनकी भाषा, रहन–सहन, व्यवहार सिखाये नहीं जाते हैं और न ही बदले जाते हैं, पीढ़ी दर पीढ़ी एक से ही चले आ रहे हैं। कौवे, कुत्ते, बिल्ली आदि की भाषा सभी स्थानों पर एक समान ही देखी जाती है, परन्तु मनुष्यों की भाषायें, रहन–सहन, व्यवहार आदि भिन्न–भिन्न होते हैं और उनमें बदलाव भी होता रहता है, पीढ़ी दर पीढ़ी वह बदलाव देखा भी जा रहा है। इसका यह अर्थ हुआ कि मनुष्य बनना पड़ता है, जन्म से बना हुआ नहीं है। अब ये देखते हैं कि मनुष्य कैसे बना जाता है।

इसके लिये आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्दजी कहते हैं कि **जो सब काम विचार करके करता है तथा स्वात्मवत् (अपनी आत्मा के समान) हानि–लाभ, सुख–दुःख अन्यों का भी मानकर वर्तता है** वही मनुष्य होता है।

सामान्यतया सभी समझते हैं कि हम तो विचार कर ही कार्य करते हैं, पर इसके लिये भी महर्षि दयानन्दजी आर्यसमाज के पाँचवें नियम में एक सूत्र देते हैं वे कहते हैं सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये, अर्थात् जो सत्य व असत्य को विदित करा देवे उसे ही विचार कहते हैं। साथ ही धर्म व अधर्म को भी बता दिया है कि सत्य ही धर्म है और असत्य ही अधर्म है। आज मनुष्य जाति ने अपने इस निज गुण को भुला दिया, इसी का परिणाम है कि आजकल ईश्वर, धर्म व जाति अनेक मानी जा रही हैं। विचार करने पर ज्ञान बनेगा कि ईश्वर एक ही है उसके गुण अनेक हैं। इस कारण गुणवाचक नाम अनेक हैं। ईश्वर एक है तो उसका स्वरूप भी एक ही होगा। ईश्वर एक है उसका स्वरूप एक है तो उसकी उपासना की पद्धति भी एक ही होगी। इसी प्रकार सत्य एक ही होता है अपनी–अपनी मान्यताओं के अनुसार सत्य अनेक नहीं होते हैं। जब सत्य एक है तो धर्म भी एक ही होगा। जन्म से एक ही जाति मनुष्य है पर विचारवान् न होने से ही जन्म से ही अनेक जातियों के मानने का कार्य हो रहा है। विचारवान् न होने से ही (अपने आत्मा के समान) स्वात्मवत् व्यवहार नहीं करते हैं। मनुष्य अपनी हिंसा, स्वयं से अन्यों के द्वारा असत्य व्यवहार, स्वयं की चोरी, स्वयं से बलात्कार, स्वयं के प्रति अन्यों से तिरस्कार नहीं चाहता है परन्तु अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये अन्यों की हिंसा, अन्यों से झूठ बोलना, अन्यों की चोरी करना, अन्यों से बलात्कार व अन्यों का तिरस्कार करने में संकोच नहीं करते हैं। इसी कारण बलवान् निर्बल को डराता है, धनवान् धनहीन का शोषण करता है, पढ़ा–लिखा अनपढ़ को मूर्ख बनाता है यह सब विचारवान् न होने के परिणाम हैं।

अतः योगाभ्यासी को सर्वप्रथम विचारवान् होना चाहिये। विचारवान् ही शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर सकता है, शुद्ध ज्ञान से ही शुद्ध कर्म बनते हैं,

शुद्ध कर्म से शुद्ध उपासना होती है और शुद्ध उपासना से ही इच्छित फल की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं।

सभी मनुष्य स्वभाव से सुख चाहते हैं दुःख कोई भी नही चाहता है इसका कोई भी विरोधी नहीं है। पर प्रायः सभी जो–जो विषय इन्द्रियों को अनुकूल लगते हैं उसे सुख व जो–जो प्रतिकूल लगते हैं उसे दुःख मानते हैं इस कारण सुख के साधन व दुःख के साधन भी बाहर ही हैं यही मान्यता होती है। अतः सुख प्राप्ति व दुःख की निवृत्ति के लिये सभी प्रयत्न बाह्य (बाहर) की ओर ही होते हैं। सुख के साधनों का संग्रह धन से होता है तथा दुःख निवारण के साधनों का संग्रह भी धन से होता है इस कारण सभी की प्रवृत्ति अधिक से अधिक धन प्राप्ति की ओर लगी हुई है। आज जिन्हें वैज्ञानिक कहते हैं वह भी ऐसे–ऐसे अनुसंधान में जीवन लगा रहे हैं कि कौन सा ऐसा उपाय, साधन मिल जाये कि मनुष्य अधिक से अधिक विषय सुखों को लम्बे काल तक भोग सके। अन्यों से बाधा न हो इसलिये अनेक प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों का आविष्कार भी किया जा रहा है। इस प्रकार की प्रवृत्ति आगे जाकर आत्मघाती ही बनेगी क्योंकि परिणाम को नहीं देख रहे हैं। आज वर्तमान में इसी का परिणाम चोरी, डकैती, हिंसा, व्यभिचार, भ्रष्टाचार आदि बढ़ रहे हैं। बिना विचार के यही परिणाम होते हैं एक उदाहरण से इसको समझते हैं चार विद्यार्थी स्नातक बनकर घर की ओर जा रहे थे मार्ग में एक सिंह का कंकाल मिला तो उन्होने अपनी–अपनी विद्या का प्रयोग करने का विचार बनाया। एक ने उस कंकाल में मांस रूधिर सब भर दिया, दूसरे ने उसके ऊपर चमड़ी लगा दी, तीसरे ने उसकी इन्द्रियों का निर्माण कर दिया, अब चौथे ने कहा कि मैं इसमें प्राण डालता हूँ जैसे ही उसने उसमें प्राण डाले, सिंह ने सभी को मार डाला। उन्होंने विचार नहीं किया कि प्राण डालने पर क्या होगा। इसी प्रकार जो अन्यों की हानि व अपने लाभ के लिये आज शस्त्रों का निर्माण हो रहा है उनका जब भी प्रयोग होगा सभी के लिये घातक होगा।

एक ओर भोले–भाले सीधे–सादे व्यक्ति हैं जो अपने को धार्मिक कहते हैं उनका शोषण चालाक लोग कर रहे हैं, धर्म के नाम पर, जाति

के नाम पर, भगवान् के नाम पर, हमारे पापों को भगवान् क्षमा कर देगा, भगवान् के दर्शन से, पूजा पाठ कर्मकाण्ड से स्वर्ग मिलेगा, हम तुम्हें मुक्ति दिला देंगे, नाम जपमात्र तथा कथा श्रवण मात्र से ही मुक्ति हो जायेगी, इस प्रकार सम्पूर्ण मानव जाति ठगी जा रही है क्योंकि हम विचारवान् नहीं हैं सत्यासत्य की परीक्षा नहीं करते हैं। एक कथानक से यह बात स्पष्ट हो जायेगी एक यात्री पैदल यात्रा कर रहा था वह भोला–भाला, सीधा–सादा था। मार्ग में एक पिंजरे में चालाक शेर बन्द था। उसने यात्री को बुलाया और कहा भाई मैं निरपराध हूँ, मुझे अकारण ही पिंजड़े में बन्द कर दिया है, मैं भूख से मर रहा हूँ, आप पिंजड़े का दरवाजा खोल दो, मैं आपका बहुत आभारी रहूँगा, आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगा। यात्री ने विश्वास कर दरवाजा खोल दिया। जैसे ही वह दरवाजे के बाहर आया तो उसने यात्री को पकड़ लिया। यात्री ने कहा ये क्या कर रहे हो। शेर ने कहा मै बहुत भूखा हूँ चला नहीं जाता इस कारण तुम्हें पहले खाऊँगा, तब चला जाऊँगा। यात्री घबरा गया। उसने कहा यह तो अन्याय है शेर ने कहा किसी से न्याय करा लो। इतने में कोई बुद्धिमान व्यक्ति उधर से आया। उसको यात्री ने बुलाया व कहा कि भाई हमारा न्याय कर दो। तब दोनों से उनकी बातें सुनी। यात्री ने कहा कि शेर ने कहा था कि मैं भूखा मर रहा हूँ अतः पिंजड़े का दरवाजा खोल दो मैं तुम्हारा उपकार मानूँगा। पर अब यह तो मुझे ही मार रहा है यह अन्याय है। तब शेर ने कहा कि भाई यह ठीक कहता है पर मैं बहुत भूखा हूँ चला नहीं जाता है इस कारण इसे खाऊँगा तभी तो जाऊँगा। उस व्यक्ति ने कहा कि तुम्हारी बात ठीक है पर पहले क्या स्थिति थी उसे देख लूँ तब ठीक–ठीक बताऊँगा, तब शेर पिंजड़े में गया व यात्री ने दरवाजा बन्द किया और कहा यह स्थिति पहले थी, तब बुद्धिमान व्यक्ति ने यात्री को कहा कि अब तुम जाओ।

मनुष्य विचार करे व देखे कि यथार्थता क्या है क्या सांसारिक विषयों से मैं सदा सुखी हो जाऊँगा। तो देखेगा क़ि विषय सुखों से तो विषय तृष्णा बढ़ती है घटती नहीं है, जिस सुख के लिये विषयों को

भोगा तो वह तो ठहरा ही नहीं इसके विरूद्ध जितना भी भोगता है तृष्णा बढ़ती ही जाती है। शरीर व इन्द्रियाँ एक सी नहीं रहेंगी न ही वस्तुयें सदा एक सी रहती हैं अर्थात् संसार, शरीर व इन्द्रियाँ अनित्य हैं इनसे नित्य सुख कभी भी सम्भव नहीं। यहाँ तो संयोग–वियोग का जोड़ा है अतः सुख का परिणाम तो दुःख ही बनेगा।

अब यहाँ के दुःखों को हटाने पर भी विचार करके देखते हैं– दुःख आते हैं उन्हें हटाता भी हूँ पर कालान्तर में फिर आ जाते हैं। ऐसा करते–करते तो अन्त में जरा, (बुढ़ापा) व्याधि व मरण जो दुःख आयेगा यह तो हटना सम्भव ही नहीं है दुःख हटाने के समस्त (सारे) पुरूषार्थ निष्फल हो जायेंगे।

तब वह विचार करता है कि क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है कि जिससे आया हुआ सुख न जाये व गया हुआ दुःख पुनः लौट कर न आये। बाह्य (बाहर के) जितने उपाय हैं उनसे तो असम्भव ही लगता है। तब वेदादि सत्य ग्रंथों के आधार पर ऋषियों ने कहा कि एक उपाय है जिससे आया हुआ सुख नही जाता व गया हुआ दुःख पुनः नहीं आता है। संसार व शरीर तो नित्य नहीं हैं न इनका स्वभाव ऐसा है इसलिये विषयों से इच्छा पूर्ति नहीं हो सकती। मनुष्य भी आपस में यह इच्छा एक दूसरे की पूर्ण नहीं कर सकते क्योंकि सभी की तो यही माँग है कौन किसकी पूर्ति करेगा। एकमात्र परमेश्वर ही ऐसा चेतन, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, निराकार, दयालु, न्यायकारी, सब दुःख क्लोशों से रहित व पूर्णानन्द युक्त है तथा वह अपने उपासकों के सब दुःखों को हटाने व अपने ज्ञान, बल, आनन्द को देने में समर्थ है। उसकी उपासना का एकमात्र उपाय योगाभ्यास ही है अन्य कोई विकल्प नहीं है। उस योग का विधान महर्षि पतञ्जलिजी द्वारा दिया गया है।

सर्वप्रथम उसका ज्ञान होना आवश्यक है तभी उसका क्रियान्वयन किया जा सकता है। उस योग को संक्षेप में समझते हैं। प्रायः गृहस्थ व्यक्ति योगाभ्यास से भय करते हैं क्योंकि योग को स्वयं तो समझते नहीं हैं और अन्यों (दूसरों) के द्वारा भ्रान्ति युक्त बातें बताई जाती हैं। कहते हैं योग बड़ा कठिन है यदि थोड़ी सी भूल हो जावे तो बड़ा

अनिष्ट होता है। महिलाओं को तो योग करना ही नहीं चाहिये, न गृहस्थों को योग करना चाहिये इसके लिये तो घर–बार छोड़ना पड़ता है। ऐसी–ऐसी बातें सुनकर व्यक्ति उसमें प्रवृत्त नहीं होता है। ऐसे ही आर्यसमाज के विषय में व महर्षि दयानन्द के विषय में भी अन्यों ने बड़ी भ्रामक बातें प्रचारित कर रखी हैं व आर्यसमाज के समीप नहीं आने देते। कहते हैं ये तो नास्तिक हैं, विधर्मी हैं, भ्रष्ट हैं न राम को, न हनुमान को, न कृष्ण को मानते हैं। सामान्य व्यक्ति उनके बहकावे में आ जाता है। एक उदाहरण से उसे समझते हैं? एक गृहस्थ था उनका यह व्रत था कि पहले किसी साधु, संन्यासी आदि अतिथि को भोजन कराकर उसके पश्चात् ही भोजन करना। एक बार ऐसा संयोग हुआ कि वर्षा के कारण दो दिन तक कोई अतिथि नहीं मिला। उनका एक ५–६ वर्ष का बालक भी था, वह तो भूख के कारण रोने लगा तब उन्होने एक उपाय सोचा कि चीनी के तीन साधु हलवाई से ले आते हैं उन्हीं को दिखाकर हम भोजन कर लेंगे। ऐसा सोच तीन चीनी के साधु लाया व घर में रख बाजार से और सामान लाने के लिये जाने लगा। तब सामने तीन साधु दीखे तो उन्हें देख बड़ा प्रसन्न हुआ चलो अब व्रत भंग नहीं होगा। उनके पास जा, घर चलने के लिये प्रार्थना की और कहा कि आज का भोजन मेरे यहाँ ही होगा। वे भी बड़े प्रसन्न हुये कि आज बड़ा भाग्य है कि बिना माँगे ही आदरपूर्वक भोजन मिल रहा है। उनको घर जाकर बैठा दिया, आप वापिस बाजार से और सामान लेने चला गया। घर में बच्चा भूखा था वह चीनी के साधु देख कहने लगा माँ साधु खाऊँगा, तब मां बोली बेटा ठहर जाओ पिताजी बाजार से आ जायेंगे तब तीनों मिलकर एक एक साधु खा लेंगे। उन साधुओं नें जब यह सुना तो घबरा गये व बिना कहे वहाँ से उठ कर चले गये। आगे गृहस्थी आता दिखा तब तो वे भागने लगे। गृहस्थी पीछे पीछे दौड़ा और ठहरने के लिये आवाज लगाई पर वे न रूके। तब किसी और व्यक्ति ने साधुओं को रोका और कहा आप रूक जाओ वह तो बड़ा सज्जन है साधुओं का सत्कार करता है। बहुत समझाने पर वे रूके। तब गृहस्थी आया और कहा आप क्यों भाग रहे हो मैं सब सामान लाया

हूँ चलिये घर चलें। सब साधुओं ने बताया कि आपका बच्चा भीतर कह रहा था कि माँ साधु खाऊँगा तब बालक को आपकी पत्नि कह रही थी कि ठहर जा पिताजी को आने दो फिर तीनों मिलकर एक–एक साधु खायेंगे तब तो हम जान बचाकर भागे। अब गृहस्थी जोर से हँसा व उसने कहा कि घर में तीन चीनी के साधु रखे हैं उनके विषय में कहा गया है चलिये वापिस। भ्रान्ति हटने पर सहर्ष वापिस चले आये।

इसी प्रकार योग, आर्यसमाज व महर्षि दयानन्द के प्रति यथार्थ ज्ञान न होने से दूसरों के बहकावे में आ जाते हैं। योग तो रसायन है सभी प्रकार के दुःखों के नाश करने वाली विद्या है। जो भी इसको समझ कर इसका आचरण करेगा, उसके सब दुःख–क्लेश हट जायेंगे व स्थिर सुख की प्राप्ति होगी। योग व्यवहारिक विषय है प्रत्येक परिस्थिति में, प्रत्येक देश में, प्रत्येक काल में, सभी मनुष्य जाति के लिये अपनाने योग्य है क्योंकि सभी तो दुःख से छूटना व सुख को पाना चाहते हैं।

महर्षि पतञ्जलिजी योग दर्शन के प्रथम समाधि पाद मे ही योग क्या है, योगाचरण से क्या स्थिति होती है व उससे क्या लाभ हैं उसके लिये निम्न सूत्र है–

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।। (१/२)

इसमें चार शब्द हैं इनके अर्थों की यदि समझ बन गई तब योगाभ्यास कठिन नहीं होगा।

योग–सामान्यतया योग का अर्थ मेल मानते हैं। आत्मा से परमेश्वर का मेल योग मानते हैं पर यह ठीक नहीं है। परमात्मा सर्वव्यापक व नित्य है वह तो आत्मा में था, है व रहेगा। उससे कभी भी वियोग सम्भव ही नहीं है फिर मेल अर्थ ठीक नही। योग का अर्थ है समाधि, पर समाधि का वर्तमान स्वरूप ही अलग मानने लगे कितनी अधोगति हो गई है। किसी व्यक्ति के शरीर अवशेषों को नीचे दबाकर ऊपर चबूतरा बना देते हैं और उसको समाधि कहने लगे हैं। जैसे महात्मा गाँधी की समाधि है। योगाभ्यासी प्रायः यह समझते हैं कि मेरी समाधि लगेगी। पर ऐसा नहीं यह भी भूल है। समाधि तो चित्त का धर्म है चित्त की अवस्था

परिवर्तन करके समाधि अवस्था में लाऊँगा। जिस पद्धति से चित्त को समाधि अवस्था में परिवर्तित किया जाता है वह योग है।

चित्त– दूसरा शब्द चित्त है आत्मा जहाँ अपनी इच्छा को प्रेषित करती है वह चित्त है, चित्त फिर उन इच्छाओं को इन्द्रियों को प्रेषित करता है, इन्द्रियों का सम्बन्ध इच्छानुकूल विषय से होता है। विषयों का प्रत्यक्ष इन्द्रियाँ करती हैं वह फिर चित्त को प्रेषित करती हैं, चित्त फिर आत्मा को प्रेषित करता है। चित्त वह यन्त्र है जो भीतर से बाहर के कार्यों को और बाहर से भीतर की ओर किये कार्यों को आत्मा की प्रेरणा से करता है। जिसे मन भी कहते हैं।

वृत्ति–जिन साधनों से चित्त अपना समस्त व्यवहार सम्पादित करता है उसे "वृत्ति" कहते हैं।

निरोध– जब चित्त का कार्य पूर्ण रूप से स्थगित कर दिया जाता है अर्थात् बाहर से कोई वृत्ति नहीं ग्रहण की जाती है और न ही भीतर से किसी वृत्ति को उठाया जाता है सभी प्रकार से चित्त के कार्यों को छोड़ दिया जाता है वह चित्त की निरोध (रोक) अवस्था कहलाती है। इस अवस्था को सम्पादित (बनाने) पर क्या होता है–

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।। (१/३)

चित्त को निरोधावस्था (निरूद्धावस्था) में परिणित करने (ढाल लेने) पर आत्मा अपने स्वरूप में स्थित होती है उसके साथ ही स्वयं में (अपने भीतर) जो व्यापक परमेश्वर है उसमें स्थिति होती है। अर्थात् आत्मा व परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

इस स्वरूप स्थिति से क्या लाभ होगा –

वृत्तिसारूप्यमितरत्र (१/४)

सामान्य व्यक्ति अपने यथार्थ स्वरूप को नहीं जानता है इससे क्लेशों को भोगता है अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष व अभिनिवेश ये सब क्लेश हैं। मैं शरीर हूँ जब ऐसा मानता है तो मरण त्रास सताता ही

रहता है। मान–अपमान, सुख–दुःख, हानि–लाभ, संयोग–वियोग आदि सभी द्वन्द्वों से पिसता रहता है। जब स्वरूप स्थिति का लाभ होता है तो देह भाव छूट आत्मभाव में रमण करता है तब अपने को शरीरादि से पृथक्, नित्य, शुद्ध, पवित्र, अजर–अमर, चेतन, आत्मा जानते हुये सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, आनन्दस्वरूप में मैं स्थित था, हूँ व रहूँगा! समाधि अवस्था के पश्चात् जब व्यवहार काल में आता है तो उस अवस्था में सब कुछ वैसा ही जानता है, जैसे अन्य लोग जान रहे हैं और स्वयं भी पहले जानता था। पर अब ज्ञान परिवर्तन में दृष्टिकोण बदल जाता है इस कारण भोग भी बदल जाता है। उसकी वृत्तियाँ द्वन्द्वों (जोड़ों) से रहित होती हैं। हर्ष–शोक में लिप्त नहीं होती हैं। शान्तचित्त रहता है, यही तो वह चाहता था। पूर्व में संसार देखा था यहाँ विषयों का सुख पाता था पर वह छूट जाता था परन्तु सुख, भोग के पश्चात् तृष्णा की अग्नि साथ लग जाती थी। तब दुःख भी भोगता था उन्हें हटाता भी था पर पुनः दुःख और आते थे इस कारण बहुत व्याकुल बेचैन रहता था ज्यों–ज्यों सुख ठहराने व दुःख भगाने का प्रयत्न करता था त्यों–त्यों जटिलतायें बढ़ती जाती थीं। अब उन सबसे छूट गया है। ईश्वर के सानिध्य से विद्यायुक्त होकर आनन्द में रहता है और किसी प्रकार के क्लेश नहीं सताते हैं जैसे प्रकाश में अन्धकार कभी नहीं आता है। अतः सभी को योग (समाधि) का लाभ अवश्य लेना चाहिये।

योग का विधान क्या है ? महर्षि पतञ्जलिजी एक कुशल वैद्य के अनुसार रोग उसके कारण, रोग का निरोध, निवृत्ति के उपाय के समान ही योग विद्या को भी बताते हैं। इसके लिये उनके पारिभाषित शब्द हैं

पहला–**हेय**–छोड़ने योग्य दुःख

दूसरा–**हेय हेतु**–दुःखों का मूल कारण

तीसरा–**हान**–दुःखों का निरोध

चौथा–**हानोपाय**–दुःख निवारण के स्थायी उपाय। इसके लिये वे चार सूत्र देते हैं–

(१) हेयं दुःखम् अनागतम्। (२/१६)

कौन से दुःख छोड़ने योग्य हैं। विचार करने पर ज्ञान होता है कि जो भोगे जा चुके हैं वे तो छूट गये हैं। जो वर्तमान में भोगे जा रहे हैं वे भी भोगे ही जा रहे हैं अर्थात् भूत में जा रहे हैं। जो दुःख अभी नही आये हैं वे ही छोड़ने योग्य हैं। सांसारिक सुख भी दुःखरूप ही दीखना चाहिये तभी दुःखों को छोड़ने की बात होती है। सांसारिक सुख–दुःख दोनों से छूटने की इच्छा ही हेय पक्ष में आती है।

(२) द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेय हेतुः।। (२/१७)

पतञ्जलिजी कहते हैं कि दुःखों का मूल प्रकृति और जीवात्मा का संयोग है और यह संयोग अविद्या के कारण हुआ है। अतः दुःखों का मूल (जड़) अविद्या ही है।

(३) तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्।। (२/२५)

दुःख का निरोध क्या है। जो दुःख का मूल कारण है कारण के हटने पर कार्य का अभाव हो जाता है अर्थात् अविद्या का वियोग दुःखों को हटाने का उपाय है।

(४) विवेकख्यातिर विप्लवाहानोपायः।। (२/२६)

स्थिर तत्व ज्ञान (विवेकख्याति) ही एकमात्र उपाय है।

उस स्थिर तत्व ज्ञान के लिये ही योग का अनुष्ठान किया जाता है। योग क्या है जो अविद्या का वियोग करा दे वही योग है। अविद्या का वियोग कब सम्भव है जब विद्या की स्थापना हो जाये तब अविद्या का वियोग होता है इसके सिद्ध करने के लिये प्रत्यक्ष, अनुमान व आगम प्रमाणों का प्रयोग करना होता है। आगम अनुभव सिद्ध व्यक्ति के होते हैं उसके लिये किसी प्रत्यक्ष के आधार पर अनुमान करना होता है। फिर अनुमान से आगम की समझ बनाकर प्रयोग किया जाता है। **उदाहरण**–एक कृशकाय व्यक्ति था वह अनेकों प्रकार की चिकित्सा कर चुका था पर सबल पुष्ट नहीं बना, तब एक सबल पुष्ट व्यक्ति ने उससे कहा देखो भाई आम एक फल होता है उसका रस बड़ा स्वादिष्ट व पौष्टिक होता है यदि विधिपूर्वक उसका सेवन किया जावे तो कृशता (कमजोरी)

हटकर सबल पुष्ट बना जा सकता है जैसे मैं बना हूँ। कृश व्यक्ति ने कभी आम देखा नहीं था इसलिये उसके लिये ये शब्द आगम प्रमाण (शब्द प्रमाण) हैं पर उसने अन्य फल प्रत्यक्ष देखे हैं। दूसरा व्यक्ति आम की आकृति बनाकर उसे दिखाता है कि आम ऐसा होता है। उसने अन्य फलों की आकृतियाँ देखी थी अतः वह व्यक्ति उस अनुमान प्रमाण से आम के फल की खोज कर सकता है उसने खोज की और आम पाया और जिसने कहा था उससे प्रमाणित करवाया। प्रमाणित होने पर उसको चखा, वह स्वादिष्ट था पर तत्काल उससे कृशता हटकर पुष्टता नहीं आई पर जब विधिपूर्वक लम्बे काल तक प्रयोग किया तो कृशता हटकर हृष्ट–पुष्टता आ गई। इसी प्रकार योग के विषय में भी समझना चाहिये। महर्षि पतन्जलि एक सूत्र देते हैं–

योगाङ.गानुष्ठानादशुद्धिक्षयेज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः। (२/२८)

योग के अँगों का व्यवहारिक रूप में आचरण करने से अविद्यारूपी अन्धकार का नाश होकर विवेक ख्यातिरूप विद्या का प्रकाश होता है इसका फल दुःखों से छूटना व ईश्वर के ज्ञान, बल व आनन्द का प्राप्त होना होता है। योग के आठ अँग हैं इसको दो भागों में महर्षि पतञ्जलिजी ने बताया है

प्रथम बहिरंग। — इसमें प्रथम पाँच अँग आते हैं।
पहला–**यम**, दूसरा–**नियम**, तीसरा–**आसन**, चौथा–**प्राणायाम**, पाँचवाँ–**प्रत्याहार**।

दूसरे अन्तरंग — इसमें अन्तिम तीन होते हैं–
धारणा, ध्यान, समाधि।

यम–नियमों का अभ्यास व्यवहार काल में करते हैं। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार का अभ्यास स्थिर आसनस्थ होकर अन्तरंग में प्रवेश की योग्यता के लिये करते हैं जब उपरोक्त पाँच अँगों में यथायोग्य सिद्धि होती है तो वह अन्तरंग में गति करने में समर्थ होता है।

यम पांच हैं और नियम भी पांच हैं। इनके नाम व परिभाषा निम्न प्रकार हैं–

यम –

१. अहिंसा – सब प्राणियों के साथ वैरभाव छोड़कर प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना अहिंसा है।

२. सत्य – सत्य ही बोलना झूठ कभी न बोलना।

३. अस्तेय – चोरी कभी न करना सत्य व्यवहार रखना।

४. ब्रह्मचर्य – लम्पट न होना, वीर्य की रक्षा करना, जितेन्द्रिय होना।

५. अपरिग्रह – निरभिमानी होना, अभिमान कभी न करना। आवश्यकता से अधिक सामान न जोड़ना।

नियम –

१. शौच – बाहर जलादि से शुद्ध होना व भीतर राग–द्वेष से रहित होना।

२. सन्तोष – धर्मयुक्त पुरूषार्थ से लाभ में न प्रसन्न और हानि में न अप्रसन्न होना। परन्तु आलस्य का नाम सन्तोष नहीं है।

३. तप – सुख–दुःख, लाभ–हानि, सर्दी–गर्मी आदि द्वन्द्वों को प्रसन्नतापूर्वक सहन करते हुये धर्माचरण ही करना, अधर्म कभी न करना।

४. स्वाध्याय – वेदादि सत्य ग्रन्थों का पढ़ना–पढ़ाना, सत्पुरूषों का संग, आत्मनिरीक्षण और परमेश्वर के मुख्य नाम "ओउम्" का अर्थपूर्वक नित्यप्रति जप करना और विचार करना।

५. ईश्वर प्राणिधान – ईश्वर की आज्ञा पालन में स्वयं को समर्पित रखना। (यह व्यवहार का योगाभ्यास है) इस अभ्यास से ही जो बैठकर अभ्यास करते हैं

उसमें लाभ मिलता है एक दूसरे के पूरक हैं। योगाभ्यास अखण्ड होता है यह कभी खण्डित नहीं होता। अभ्यास दीर्घकाल तक निरन्तर करना चाहिये। बन्दरवत् अभ्यास न हो।

उदाहरण – एक बन्दर था। बगीचे में आम खाने जाता था तो उसे पत्थर मारकर भगाते थे तब उसने सोचा कि मैं अपना ही बगीचा बनाऊँ। आम की गुठलियाँ लाकर उसने भूमि में गाड़ दी और पानी दे दिया। दो दिन बाद खोदकर देखा तो अँकुरण नहीं हुआ था। फिर गुठलियों को दबा दिया और पानी छोड़ दिया, पुनः अधैर्यता के कारण खोदकर देखा, पर अँकुरण नहीं दिखा तब पुनः रख दिया और दो दिन बाद फिर देखा अँकुरण तो हुआ था पर देखने से जड़ टूट गई फिर उसने गुठलियाँ दबाकर पानी दे दिया आगे फिर देखा तो गुठलियाँ सड़ गई थी। इस प्रकार जो शीघ्र फल की कामना करके अभ्यास करता है जब फल नहीं दिखता तो अभ्यास छोड़ देता है इसलिये अभ्यासी को धैर्यपूर्वक लम्बे काल तक निरन्तर तप, ब्रह्मचर्य और विद्यापूर्वक अभ्यास करना चाहिये, तभी यथायोग्य लाभ होता है।

अविद्या कैसे बनती है ऋषियों ने कहा है इन्द्रिय दोष व संस्कार दोषों से अविद्या निर्मित होती है। मान लो आँख में दोष है तो यथावत् (ठीक) नहीं दिखेगा। दोषयुक्त नेत्र से जब कार्य करेंगे तो फल भी दोषयुक्त मिलेगा अर्थात् इच्छित फल नहीं होगा। चलते हुये मार्ग में ठोकर लगेगी जिससे दुःख पैदा होगा पर जिसके नेत्रों में दोष नहीं है वह ठोकर खाने से बच जायेगा। इसी प्रकार संस्कार दोषों से युक्त चित्त के द्वारा जब कर्म किये जाते हैं तो उनका फल दुःख होता है। पदार्थ का यथावत् (ठीक) ज्ञान न होना ही अविद्या और अविद्या के संस्कारों से कर्म करने पर दुःख होता है। अविद्या का निवास स्थान स्वयं के चित्त में होता है बाहर औरं कोई उत्पादक कारण नहीं होता इसलिए योगाभ्यासी संस्कारों का परिवर्तन कर चित्त अवस्था को बदलता है। अविद्या का वियोग विद्या से होता है और विद्या परमेश्वर का गुण है जो स्वयं ईश्वर में व्याप्त है। इसलिये ईश्वरोपसाना की

जाती है जिसका परिणाम विद्या की प्राप्ति या अविद्या का वियोग होता है योगाभ्यास से यही सिद्ध किया जाता है।

अविद्या के हटाने और विद्या प्राप्ति के लिये चार प्रकार के कर्म किये जाते हैं। श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार।

१. श्रवण – श्रवण उसको कहते हैं कि आत्मा को मन के और मन को श्रोत्रेन्द्रिय के साथ यथावत् युक्त करके वक्ता के मुख से जो–जो अर्थ और सम्बंध के प्रकाश करने हारे शब्द निकलें उनको श्रोत्र से मन, मन से आत्मा में एकत्र करते जाना श्रवण कर्म है।

सामान्य व्यक्ति जैसी अपनी धारणायें होती हैं उन्हीं को ठीक मानकर कर्म करता रहता है। और दूसरे व्यक्ति जो बताते हैं उस पर भी विचार किये बिना कर्म करने लग जाते हैं। यह ठीक नहीं है। परीक्षा करके ही कर्म करना लाभदायक होता है तभी व्यवहार और परमार्थ सिद्ध होते हैं इसलिये योगाभ्यासी व्यक्ति अपनी मान्यताओं तथा अन्यों की मान्यताओं की परीक्षा करता है और परीक्षा से सत्यासत्य को जानता है। पश्चात् यह न करना, यह करना वही ठीक–ठीक सिद्ध होने पर वैसा ही आचरण करना चाहिये जिससे कि प्रयोजन की सिद्धि यथावत् हो, ऐसा करके कर्म करने वाला व्यक्ति योगाभ्यासी होता है। यही योग का व्यवहारिक स्वरूप है जो प्रत्येक मनुष्य को अपनाना चाहिये।

परीक्षा के पाँच उपाय हैं। सत्यासत्य का निश्चय किस प्रकार से होता है क्योंकि जिसको एक सत्य कहता है दूसरा उसी को मिथ्या बतलाता है उसके निर्णय करने में ये पाँच साधन हैं –

१. ईश्वर– उसके गुण, कर्म, स्वभाव और वेद विद्या। २. सृष्टिक्रम। ३. प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण। ४. आप्तों को आचार–उपदेश ग्रन्थ और सिद्धान्त। ५. अपने आत्मा की साक्षी अनुकूलता, जिज्ञासा, पवित्रता और विज्ञान।

१. जो–जो ईश्वर के न्यायादि गुण पक्षपात रहित सृष्टि बनाने का क्रम और सत्य, दयालुता, परोपकारिता आदि स्वभाव और वेदोपदेश सत्य, धर्म ठहरे वही सत्य और धर्म। और जो–जो असत्य–अधर्म ठहरे

वही 'असत्य' और 'अधर्म' है। इससे यह सिद्ध होता है कि जो सृष्टि की रचना करने हारा पदार्थ है वही ईश्वर और उसके गुण, कर्म, स्वभाव वेद और सृष्टिक्रम से ही निश्चित जाने जाते हैं। जैसे कोई कहे कि बिना कारण वा कर्त्ता के कार्य होता है सो सर्वथा मिथ्या (झूठा) जानना।

२. **सृष्टिक्रम** – सृष्टि के गुण, कर्म, स्वभाव से विरूद्ध हो वह मिथ्या और जो अनुकूल हो वह सत्य जैसे कोई कहे बिना माता–पिता के लड़का, कान से देखना, आँख से बोलना आदि होता वा हुआ है ऐसी–ऐसी बातें सृष्टि क्रम से विरूद्ध होने से मिथ्या हैं। असत्य हैं, झूठी हैं।

३. प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों से परीक्षा – जो जो प्रत्यक्षदि प्रमाणों से ठीक–ठीक ठहरे वह सत्य और जो विरूद्ध ठहरे वह मिथ्या समझना चाहिये। जैसे किसी ने किसी से कहा कि यह क्या है दूसरे ने कहा कि पृथ्वी यह **प्रत्यक्ष** है इसको देखकर इसके कारण का निश्चय करना **'अनुमान'** बिना बनानेहारे के घर नहीं बन सकता, वैसे ही सृष्टि के **बनानेहारा** ईश्वर भी बड़ा बुद्धिमान् कारीगर है। यह दृष्टान्त **'उपमान'** सत्योपदेष्टाओं का उपदेश **शब्द**। भूतकालस्थ पुरूषों का वर्णन, सृष्टि आदि पदार्थों की कथा **'ऐतिह्य'** एक बात को सुनकर दूसरी बात को बिना सुने, कहे प्रसंग से जान लेना **'अर्थापत्ति'**, कारण से कार्य होना **'सम्भव'** और किसी ने किसी से कहा कि जल ले आओ उसने वहां जल के अभाव को देखकर तर्क से जाना जहां जल है वहां से लाके देना चाहिये यह **'अभाव'** प्रमाण कहलाता है। इन आठ प्रमाणों से जो विपरीत न हो वह–वह सत्य है।

४. आप्तों के आचार व सिद्धान्त– जो सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, पक्षपातरहित सबके हितैषी, विद्वान् सबके सुख के लिये प्रयत्न करें वे धार्मिक लोग आप्त कहाते हैं। जो–जो उनके उपदेश आचार ग्रन्थ और सिद्धान्त से युक्त हों वह–वह सत्य है। और जो–जो विपरीत है वह–वह असत्य है।

५. आत्मा से परीक्षा– जो–जो अपना आत्मा अपने लिये चाहे सो सबके लिये चाहना और जो–जो न चाहे सो–सो किसी के लिये न

चाहना। जैसा आत्मा में हो वैसा मन में, जैसा मन में हो वैसा क्रिया में होने को जानने–जनाने की इच्छा शुद्ध भाव और विद्या से देखके सत्यासत्य का निश्चय करना चाहिये।

दूसरा–मनन कर्म– पहला कर्म इन्द्रियों का विषयों से सम्बन्ध बनाकर किया गया था अब यह जो दूसरा कर्म है यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस समय विषयों, इन्द्रियों व शरीर से सम्बन्ध नहीं रखा जाता है। आत्मा का सम्बन्ध मन (चित्त) से ही होता है। इसी कारण यह मनन कर्म है। इसके लिये जो स्थिति बनाते हैं उसका प्रकार निम्न है–

शरीर से अन्य कार्यों को छोड़कर शुद्ध, शान्त एकान्त देश में शरीर को स्थिर किया जाता है अर्थात् जिसमें बिना हिले–डुले सुखपूर्वक लम्बे काल तक उपासना के लिये बैठा जो सके। ऐसी स्थिति को ही योग का आसन कहते हैं पश्चात् इन्द्रियों को विषयों से हटाया जाता है और प्राणायाम करके चित्त की चंचलता छुड़ाई जाती है। ये योग के प्रत्याहार और प्राणायाम अँग हैं। अब इस स्थिति के सम्पादित होने पर शुद्ध ज्ञान बनाने के लिये जो कर्म किया जाता है वह 'मनन' कर्म है इसमें जो–जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध आत्मा में एकत्रित हुये हैं उनकी परीक्षा करना अर्थात् क्या सत्य है और क्या असत्य है, किससे प्रयोजन की सिद्धि और उल्टे होने में क्या–क्या हानि होगी, इसको जानना, इसमें संशय रहित होना। इसे 'मनन' कर्म कहते हैं। इस पर ही सब कुछ निर्भर होता है।

तीसरा–'निदिध्यासन'–जो–जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध सुने विचारे हैं वे ठीक–ठीक हैं वा नहीं इस बात की विशेष परीक्षा करके बुद्धि पर दृढ़ निश्चय बनाना इसे ही ध्यान की प्रक्रिया भी कहते हैं, यही 'निदिध्यासन' है।

चौथा–साक्षात्कार–जिन अर्थों के शब्द और सम्बन्ध विचारे हैं और निश्चय किये हैं उनको ज्ञान क्रिया से सुनें और प्रत्यक्ष करके व्यवहारों की सिद्धि से अपना व पराया उपकार करना 'साक्षात्कार' कर्म है। (योगाभ्यास करने से पूर्व लक्ष्य का निर्धारण करना चाहिये। उसके लिये

शुद्ध ज्ञान होना चाहिये। ईश्वर, जीव व प्रकृति के सर्वप्रथम शुद्ध गुण, कर्म, स्वभावों को शब्दों में जानना संक्षेप में उसका विवरण इस प्रकार है–

१. **'ईश्वर'**–चेतन, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, समस्त क्लेशों से रहित, और नित्य आनन्दयुक्त है तथा अपने उपासकों को अपना ज्ञान, बल, आनन्द देकर उनके समस्त (सारे) दुःखों–क्लेशों से छुड़ाने वाला है।

२. **जीव**–चेतन, अल्पज्ञ, एकदेशी, अल्पसामर्थ्यवान्, कर्म करने में स्वतन्त्र, फल भोगने में परतन्त्र, नित्य शुद्ध, निर्विकार है। दुःखों से छूटना और सुख प्राप्ति की इच्छा वाला है।

३. **प्रकृति**– जड़ स्वयं में कोई इच्छा, प्रयत्न, सुख–दुःख और ज्ञान गुण नहीं है। ईश्वर के द्वारा कार्य–कारण, संयोग–वियोग, वृद्धि–क्षय किया जाता है। यह तीन गुणों वाली है सत्व, रज व तम। सत्व का फल सुख, रज का फल दुःख, तम का फल मोह (अज्ञान) है।

विपरीत फल वाले होकर भी तीनों गुण सदा साथ रहते हैं। प्रकृति से 'परमेश्वर' पाँच भूतों वाली सृष्टि और जीवों की शरीरों की रचना करते हैं। जिससे 'जीव' भोग और अपवर्ग को सिद्ध कर सके यह शब्दों में जान लिया जाता है, पश्चात् मनन के द्वारा किससे मेरा प्रयोजन सिद्ध होगा इसको विचारा जाता है। तब सिद्ध होता है कि एक मात्र 'परमेश्वर' ही मेरा उपास्य बन सकता है, दूसरा कोई नहीं। पश्चात् निदिध्यासन करके उस पर दृढ़ निश्चय बनाया जाता है। और गौण–मुख्य का निर्णय बनाते हैं। साध्य में कोई विकल्प नहीं होता, साधनों में विकल्प होता है अर्थात् साधन बदले जा सकते हैं साध्य नहीं बदले जाते। इसलिये हमें उस साध्य की ही उपासना करनी चाहिये।

योग– सभी प्रकार की सत्य कामनाओं को सिद्ध करने वाला है। सामान्य व्यक्ति ऐसा विचारता है कि योग में प्रवृत्त होने पर संसार की उन्नति नहीं की जा सकती पर ऐसा है नहीं। उसको एक उदाहरण से

समझते हैं। एक व्यक्ति को आम के पत्तों की आवश्यकता है उसके लिये आम की गुठली को उसने बोया तो पौधा बना और जो पत्ते मिले उन पत्तों को तोड़ लेता है इससे आगे की इच्छा भी नहीं है। इसलिये उसको आगे कुछ और मिलेगा भी नहीं। दूसरे व्यक्ति को आम की लकड़ियों की आवश्यकता है वह भी गुठली बोता है और उसे बढ़ाता हैं। शाखाओं को काट लेता है लकड़ियाँ प्राप्त होती हैं इससे आगे इच्छा भी नहीं है। इसलिये और कुछ प्राप्त होगा भी नहीं। एक तीसरा व्यक्ति है उसे आम के फूलों की आवश्यकता है वह भी गुठली बोता है पौधे को बड़ा करता है यथा समय फूल आते हैं वह उन्हे तोड़ लेता है उसे आगे और इच्छा नहीं है। इसलिये आगे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। अब एक अन्य व्यक्ति है जिसे आम के फलों की आवश्यकता है वह भी गुठली बोता है फल लाने के लिये। लम्बे काल तक पौधे की सेवा करनी पड़ेगी, श्रम भी अधिक लगेगा, समय भी अधिक लगेगा तब उसे फल प्राप्त होंगे। अब वह फलों से अनेक गुठलियाँ प्राप्त कर सकता है और अन्यों को विधान देकर फल प्राप्त करवा सकता है। जो फल प्राप्त करेगा तो उसे पत्ते, लकड़ियाँ और फूल भी प्राप्त होंगे ही, परन्तु जिनका प्रयोजन पत्ते, लकड़ी और फूल था उन्हें फल प्राप्ति नहीं होगी, न अन्यों को प्राप्त करा सकेंगे उन्हें हानि ही हानि है। जबकि फल वाले को लाभ ही लाभ है। अतः योगाभ्यासी व्यक्ति को लोक और परलोक दोनों की सिद्धि होती है हानि का तो कोई प्रश्न ही नहीं है।

ईश्वर भक्ति अथवा उपासना का एक मात्र उपाय 'योग' ही है उपासना की परिभाषा निम्न प्रकार है। जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव शुद्ध और पवित्र हैं, वैसे अपनी आत्मा में धारण करना। ईश्वर को सर्वव्यापक और अपने को व्याप्त जानकर ईश्वर के सम्मुख मैं हूँ व मेरे सम्मुख ईश्वर है इसको योगाभ्यास की रीति से साक्षात् करना उपासना कहाती है। इसका फल दुःखों और क्लेशों से छूटना और परमात्मा के ज्ञान, बल, आनन्द का प्राप्त होना है। इसी का नाम भक्ति है। इसके लिये चार भागों में अभ्यास करना होता है। जिसे 'शब्द', 'अर्थ', 'सम्बन्ध' और 'भाव' कहते हैं। जब तक व्यक्ति विचारवान् नहीं होता तब तक

साध्य का निर्णन नहीं कर सकता। सामान्यतया व्यक्ति जो योगाभ्यास को बिना ज्ञान के प्रारम्भ करते हैं वे कहते हैं कि मन नहीं ठहरता। मन जड़ है चेतन नहीं, जैसा ज्ञान होता है वैसा ही मन कार्य करता है। एक उदाहरण से इसे समझते हैं। एक कपड़े के व्यापारी थे उनकी पत्नी सत्संग प्रिय थी। एक बार कहीं प्रतिदिन सायंकाल एक महात्मा के प्रवचनों का आयोजन हो रहा था, पत्नी प्रतिदिन जाती थी, पति को भी प्रेरणा करती थी पर वे नहीं जाते थे। एक दिन पत्नी ने कहा आज तो आपको चलना ही पड़ेगा फिर आगे मत जाना उसने भी बात मान ली। और पत्नि के साथ वह सबसे पीछे जाकर बैठ गया। उसके आगे जो बैठा था उसका कुर्ता नीचे फैला हुआ था। प्रवचन प्रारम्भ हुआ, व्यापारी को नींद आने लगी और स्वप्न भी आ गया, दुकान पर बैठा है ग्राहक आया है कपड़ा खरीद रहा है। उसे नापकर कपड़े को फाड़ रहा है। नीचे उसके हाथों में कुर्ता आ गया उसने फाड़ा। सामने वाले ने देखा कि क्या हुआ तो जाना कि कुर्ता फाड़ रहा है उसको रोका। उसने कहा कि भाई भूल हो गई। मैं सपने में कपड़ा फाड़ रहा था यहाँ आपका कुर्ता हाथ में आ गया भूल हो गई क्षमा कर दो। इस उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि व्यवहार काल में मनुष्य मन को जिस कर्म में विशेष लगाकर रखता है स्वप्न में भी वही कर्म करता है। इसलिये ज्ञानपूर्वक योगाभ्यासी को अपने उपास्य का निर्णय सर्वप्रथम करना होता है और व्यवहार काल में योग के अँगों पर विचार करते हुये यम नियमों का अभ्यास करता है। तब बैठ कर उपासना करेगा तो मन स्थिर हो जायेगा। क्योंकि उसका ज्ञान बदल गया है। इसलिये व्यवहार काल का अभ्यास अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

'योग' का जो क्रियात्मक अभ्यास करते हैं उसमें सर्वप्रथम आत्म निरीक्षण पूर्वक व्यवहार काल में यम–नियमों को आचरण में लाना होता है, यह तभी सम्भव होता है जब उपास्य का निर्णय साधक बना लेता है और उपासना के लिये 'योग' को अपना लेता है। योग के अँग उनके अर्थ और फलों को जान लेता है। उनके भँग होने पर होने वाली हानियाँ और आचरण पर होने वाले लाभों को अपने चित्त में स्थिर कर

लेता है फिर भी अज्ञान के कारण भँग हो जाते हैं उसमें मूल कारण संस्कार दोषों का होता है उन दोषों को हटाने के लिये अविद्या के संस्कार हटाकर विद्या के संस्कारों को स्थापित करने के लिये आसनस्थ होकर चित्त पर विशेष कार्य करना होता है। आत्मा तो स्वयं में है ही, परमात्मा भी स्वयं में है। परमात्मा आत्मा में व्यापक है फिर भी इनके जो स्वरूप हैं वैसा हमें ज्ञान नहीं है उसका मूल कारण अविद्या ही है जो संस्कार दोषों से निर्मित हुई है उसको एक 'उदाहरण' से समझते हैं।

एक महात्मा शहर के समीप एक नदी के पास कुटिया में रहते थे उनके विषय में यह प्रचार था कि उनके पास 'पारसमणि' है नगर में एक सेठ रहता था वो अधिक से अधिक धन इकट्ठा करने की तृष्णा से ग्रसित था। जब महात्मा के विषय में उसे पता चला तो उनकी सेवा करके मैं उन्हें प्रसन्न कर लूँगा और 'पारसमणि' ही लूँगा वे अवश्य दे देंगे। ऐसी धारणा से उनके पास निवास करते हुये प्रत्येक प्रकार से उनकी सेवा में लग गया। उन्हें संशय हो गया कि वास्तव में पारसमणि है भी या नहीं। उसे मालूम था महात्मा सत्यवादी हैं। एक दिन साहस करके पूछ ही लिया कि आपके पास 'पारसमणि' है या नहीं। महात्मा ने कहा हाँ है। अब वह दूने उत्साह से सेवा करने लगा। पर उन्होंने 'पारसमणि' नहीं दी। तब उसने सोचा वह कहाँ रक्खी है इस विषय में भी पूछ लिया जाये। महात्मा जी से पूछा महाराज 'पारसमणि' कहाँ रक्खी है। उन्होंने कहा इसी कुटिया में है, तब तो वह बहुत प्रसन्न हो गया। महात्मा जी प्रतिदिन स्नान, ध्यान के लिये प्रातःकाल लगभग दो घण्टे बाहर रहते थे। अब सेठ ने सोचा मैं ही ढूँढकर ले लेता हूँ, वे तो दे नहीं रहे हैं। महात्मा जी की अनुपस्थिति में पूरी कुटिया छान मारी, पर कहीं 'पारसमणि' नहीं मिली। महात्मा जी जब वापिस आये तो वह क्रोध में उन्हें बड़े अपशब्द कहने लगा आप झूठे हो, पाखण्डी, धूर्त हो आदि–आदि। महात्मा जी ने शान्ति से पूछा क्या बात हो गई, तब उसने कहा कि आपने कहा था मेरे पास 'पारसमणि' है और इसी कुटिया में रखी है। मैंने सब ओर ढूँढ लिया है कहीं भी नहीं है। तब महात्मा ने कहा कि लोहे की छोटी पेटी है उसे मेरे पास लाओ, उसने

पेटी लाकर दी। महात्मा जी ने पूछा कि क्या इसे देखा था। उसने कहा नहीं। क्यों नहीं देखा ? इसलिये नहीं देखा क्योंकि यदि इसमें होती तो लोहा सोना हो जाता। महात्मा जी ने सन्दूक खोलकर उसमें से कपड़ों में लपेटी हुई 'पारसमणि' को निकाला और कहा इस कपड़े के 'आवरण' के कारण ही यह लोहे की सन्दूक सोना नहीं बन पाई। इस कथा का साराँश यही है कि परमात्मा रूपी 'पारसमणि' आत्मा में ही स्वयं में ही हैं। पर संस्कारों के दोषों के कारण 'अविद्यारूपी' मल से ढ़की हुई है। इस कारण परमात्मा रूपी 'पारसमणि' का लाभ नहीं मिल पा रहा। अतः चित्त शुद्धि के लिये व्यवहार काल में यम–नियमों का पालन अनिवार्य है। यमों को व्रत भी कहा है। व्रती व्यक्ति ही चित्त शुद्ध कर सकता है। अब आसन में बैठकर योग के द्वारा जो परमेश्वर की भक्ति की जाती है उसको ध्यानपूर्वक समझें। योगदर्शन में कहा गया है–

तज्जपस्तदर्थभावनम् (१/२८)

अर्थात् ईश्वर के मुख्य नाम 'ओ३म्' का स्मरण और उसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिये। इस कार्य के लिये सामान्य सभी व्यक्तियों के लिये अपनाने योग्य विधान दिया जा रहा है जिसका अनुसरण करके स्वयं लेखक ने भी लाभ उठाया है और उसको अपनाकर अन्यों ने भी लाभ उठाया है उसके चार भाग बताये हैं–**१. शब्द**–आसनस्थ होकर शब्द का अभ्यास चार स्तरों में किया जाता है–

१. नासिका द्वारों से धीरे–धीरे प्राण को भीतर भरकर मुख से ध्वनिपूर्वक लम्बा उच्चारण 'ओ३म्' का करते हैं और कर्णेन्द्रिय से उस ध्वनि को सुनते हुये उसी पर रहने का प्रयास करते हैं यह अभ्यास तीन बार करें।

२. पूर्ववत् ही सब कार्य करना है अन्तर यह है कि मुख खोलकर उच्चारण न करके कण्ठ से ध्वनि की जाती है और उसी ध्वनि पर रहा जाता है।

३. इसमें न मुख खोलकर और न ही कण्ठ से ही ध्वनि की जाती है। प्राण भरते हुये और छोड़ते हुये मानसिक स्तर पर ओ3म् का उच्चारण करते हैं।

४. इस अभ्यास में न मुख खोलकर न कण्ठ से और न ही प्राणों के साथ ओ३म् मानसिक रूप से उच्चारण किया जाता है। अपितु अब जो स्वाभाविक श्वास प्रश्वास चल रहा है उसका अनुभव लेते हैं कोई कर्म विशेष नहीं किया जाता। न कोई चेष्टा ही की जाती है।

उपरोक्त अभ्यास 'शब्द' का अभ्यास है। इस अभ्यास का फल यह होगा कि मन पर अधिकार आ जायेगा। जब यह अभ्यास परिपक्व हो जाता है तब सीधा ही दूसरा अभ्यास प्रारम्भ कर सकते हैं अन्यथा प्रथम अभ्यास के पश्चात् दूसरा अभ्यास आरम्भ करना होता है।

दूसरा शब्दार्थ– जो 'ओ३म्' शब्द उच्चारित किया है अब उसके अर्थ पर मन के द्वारा विचार करते हैं। वेदादि सत्य ग्रन्थों के आधार पर महर्षि दयानन्द जी 'ओ३म्' शब्द का अर्थ करते हैं कि यह परमेश्वर का मुख्य निज नाम है इस नाम के साथ अन्य सभी नाम लग जाते हैं। परमेश्वर के गुण सम्बन्ध अनेक हैं इस कारण गुणवाचक व सम्बन्ध ावाचक परमेश्वर के नाम भी अनेक हैं। साधक को जो गुण प्रिय हो और जो सम्बन्ध अच्छा लगे उसको प्रथम चुन लें जैसे परमात्मा परमपिता है वह बड़ा दयालु है इनका अर्थ यह होगा कि परमात्मा ने ही सबके शरीर बनाकर सबके शरीरों में आत्मा को प्रवेश कराया है इसलिये वह परमपिता है। जीवों के उपकारार्थ वह शरीर व संसार सभी कुछ देता है पर इसके बदले में किसी से भी कुछ नहीं चाहता यह उसकी दयालुता है। 'ओ३म्' कहकर ऐसा विचार करना 'शब्दार्थ' है।

तीसरा सम्बन्ध– प्रायः साधक यहाँ भूल कर देते हैं, वह सबका पिता है सब पर दया करता है। जिसका मुख्य नाम 'ओ३म्' है। ये दोनों नाम भी उसी में लग जाते हैं। इतना कहकर स्वयं से सम्बन्ध स्थापित नहीं करता जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसको ठीक प्रकार समझें। अपने में प्रश्न उठायें जो यह शरीर है क्या इसका निर्माण करने वाला मैं हूँ अथवा संसार में किसी ने निर्माण किया है तो विचार करने पर भेद खुलेगा कि इसका निर्माण करने वाला भी वही परमपिता है। मेरा भी वही पिता है जैसे संसार में पिता सन्तान–उत्पत्ति में कारण बनता है उसका पालन करता है, उसकी रक्षा करता है वैसे ही यह जो परमात्मा

है वह उसी के साधनों से पालन, रक्षा और देह में प्रवेश भी कराता है, इसलिये वह पिताओं का भी पिता है और मेरा भी पिता है लौकिक पिता तो रक्षा, पालनादि कार्य करके मुझसे अपेक्षा (कुछ इच्छा) रखता है परन्तु परमपिता किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं रखता। वह वेदज्ञान देकर सुझाव देता है कि यदि तू मेरी भक्ति करेगा अर्थात् मेरे गुणों को धारण करेगा तो मैं तुझे क्लेशों से रहित करके अपने 'ज्ञान', 'बल', 'आनन्द' को दूँगा यदि विपरीत करेगा तो क्लेशों में पिसना पड़ेगा।

इस प्रकार मनुष्यों को कर्म करने में स्वतंत्र रखता है और उसकी उपासना का प्रयोजन यह है कि जिससे स्वयं का प्रयोजन सिद्ध हो जाये। जब ऐसी समझ बनती है तो उपासक स्वेच्छापूर्वक स्वयं का हित साधने के लिये उपासना को करता है।

चौथा–'भाव'– तीन कार्य कर चुका है शब्द 'ओ३म्' का उच्चारण किया था उसका अर्थ परमपिता और दयालु किया था उससे सम्बन्ध वही मेरा पिता और मुझ पर भी दया करने वाला है। सम्बन्ध स्थापित करना सरल है। यदि सम्बन्ध का निर्वाह न किया तो फल नहीं बनता। भाव है सम्बन्ध का निर्वाह करना। एक सुपुत्र का अपने पिता के प्रति क्या कार्य होता है वैसा ही साधक को अपनाना होगा। मैं परमेश्वर का पुत्र हूँ मेरे पिता के विपरीत मेरा आचरण नहीं होना चाहिये। यदि ऐसा हुआ तो अपने पिता की संपत्ति का अधिकारी नहीं बन सकता, इससे विरूद्ध आचरण करने पर सम्पत्ति तो मिलेगी ही नहीं, पिता को दूषित करने का अपराध भी लगेगा। साधक को स्वयं को परमेश्वर का प्रतिनिधि मानना चाहिये और ऐसा ही है भी, जब कोई व्यक्ति अपने परिवार का परिचय देता है तो अपने घर का प्रतिनिधि होता है, जब गाँव का परिचय देना होता है तो उसका प्रतिनिधि होता है, जब प्रान्त का देता है तो उसका प्रतिनिधि होता है और जब विदेश में जाकर अपने देश का परिचय देता है तो देश का प्रतिनिधि होता है। इसी प्रकार जब अपने को परमात्मा की सन्तान मानता है, उसको अपना पिता कहता है तो परमात्मा का प्रतिनिधि होता है। इस गौरवपूर्ण सम्बन्ध को निर्वाह करना ही यथार्थ में पिता का भाव हुआ है। यह मेरा

पिता बड़ा दयालु है वह सब कुछ देकर भी अपने लिये मुझसे कुछ कोई अपेक्षा नहीं रखता है, मैं जो भी यहाँ दूसरों से व्यवहार करता हूँ वो सब उसी के साधनों से करता हूँ फिर मैं अन्यों से (दूसरों से) किसी प्रकार की अपेक्षा क्यों रक्खूँ ? अतः मुझे भी दूसरों के प्रति किये हुये कार्यों के बदले में कुछ नहीं चाहना चाहिये। यदि मैं अन्यों से कोई कामना करता हूँ तो वह आचरण मेरे पिता के स्वभाव के विपरीत होगा अतएव मुझे कोई भी किसी प्रकार की कामना नहीं रखनी है ऐसा ही ज्ञानपूर्वक बुद्धि में निश्चय बनाना 'भाव' कहाता है।

पूर्व में जो चार 'कर्म' बताये हैं उनकी संगति इसके साथ बनानी होगी। यह जो पूरा लेख है, इसको सुनना–पढ़ना और स्मरण करके आत्मा में रखना यही 'श्रवण' कर्म है यदि यही ठीक नहीं होगा तो आगे कुछ भी नहीं हो सकता, इसलिये 'श्रवण' कर्म बीज है उनका संग्रह अनिवार्य है तब ही मनन कर्म किया जा सकता है। 'मनन' कर्म में परीक्षा करके देखना होता है कि यह सत्य है वा असत्य मैं इसे अपनाऊँ या नहीं अपनाऊँ। ये शब्दार्थ की प्रक्रिया है ईश्वर के गुणों पर विचार करना। ईश्वर कैसा है और वैसा ही है या नहीं है, इसकी परीक्षा करके निःसंशय होना 'मनन कर्म' हुआ। यदि 'मनन कर्म' नहीं किया है तो अगला कर्म नहीं किया तो वैसा ही फल बनेगा जैसे बीज को बो दिया और उसकी रक्षा–वृद्धि नहीं की। तीसरा जो 'निदिध्यासन' कर्म है उसका विनियोग सम्बन्ध के साथ बनेगा। अब विशेष परीक्षा करके बुद्धि पर निश्चय बनाया जाता है कि परमात्मा का मुझसे क्या सम्बन्ध है और मुझसे यदि सम्बन्ध है यह निश्चय हो गया और सम्बन्ध का निर्वाह (आचरण) करने में मेरा ही कल्याण और ऐसा न करने पर मेरी ही दुर्गति है ऐसा ठीक–ठीक समझ लेना 'निदिध्यासन' कर्म होगा। अब जो साक्षात्कार कर्म है जो सम्बन्ध बनाया है अब उसके निर्वाह करने का भाव ज्ञानरूप में बनाना, उसको स्थिर करना, क्योंकि उस ज्ञान को आगे क्रिया रूप में लाना है। क्रिया रूप में लाये बिना कोई फल नहीं बनेगा। बीज़ को एकत्रित करना अच्छी बात है एकत्रित करके बोकर अँकुरित करना, उससे अच्छी बात है, अँकुरित की वृद्धि कराना उससे

अच्छी बात है। वृद्धि कराके फलवान बनाना उससे अच्छी बात है। फलवान बनाकर उसको खाकर बल वीर्य की वृद्धि करना सबसे अच्छी बात है। यदि ऐसा नहीं किया तो सब कुछ करके भी निष्फल रहेगा, तो जो 'भाव' बनाया है और 'भाव' से जो ज्ञान बनाया है उस ज्ञान के अनुसार ही कर्म करने पर फल की प्राप्ति होती है यह योग का व्यवहारिक स्वरूप है।

प्रत्येक व्यक्ति को भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, रोग–चोट आदि द्वन्द सताते हैं, अपने ज्ञान सामर्थ्यानुसार उसे हटाने का प्रयत्न करते हैं। यदि स्वयं का ज्ञान विशेष न हो तो सामर्थ्य विशेष से सम्पन्न व्यक्ति से उपकार ग्रहण करते हैं। पर जिससे उपकार ग्रहरण करने होते हैं, उसके गुर्ण, कर्म, स्वभाव को प्रथम जानता है उसके बाद ऐसा व्यवहार करता है जिससे वह स्वयं के अनुकूल बन जाये अथवा अपने को उसके अनुकूल निर्मित करता है। तब यथा विधि उपकार सिद्ध कर लेता है। ठीक इसी प्रकार से योग व्यवहार के द्वारा अपने समस्त दुःखों को उत्पन्न करने वाली "अविद्या" को हटाने व ईश्वर के "ज्ञान","बल,"आनंद" को प्राप्त कराने वाली विद्या के लिये भी व्यवहारिक अर्थ करना होगा। स्वयं का सामर्थ्य व ज्ञान नहीं है तो जिन पुरूषें का सामर्थ्य व ज्ञान है तथा जो सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ परमेश्वर है उसके गुण, कर्म, स्वभावों को जानकार या तो उनके अनुकूल बनता है अथवा अपने अनुकूल उन्हें कर लेता है व उनसे उपकार को सिद्ध करता है। परन्तु योग के व्यवहारिक स्वरूप का ज्ञान न होने के कारण, समय, श्रम व धन लगाकर भी अपने उपकार को ग्रहण नहीं कर पाता है। उसको एक उदाहरण से ठीक–ठीक समझते हैं– एक व्यक्ति को प्यास लगी पर उसे कैसे बुझाया जाता है इसका अनुभव नहीं था। अब उससे छुटकारा पाने के लिये दूसरों से पूछने लगा। एक व्यक्ति बोला कि प्यास जल से बुझती है। इसके लिये मुख से बार–बार जल शब्द का उच्चारण करो प्यास बुझ जायेगी। उसने वैसा ही किया पर प्यास नहीं बुझी । तब उसने दूसरे से पूछा उसने कहा कि प्यास जल से ही बुझती है पर उच्चारण करने से नहीं बुझेगी, एक माला लो और एकान्त में बैठकर मन से जल का जाप करो

प्यास बुझ जायेगी। उसने वैसा ही किया पर फिर भी प्यास नहीं बुझी। तब और अन्य के पास गया उसने कहा प्यास जहल से ही बुझती है पर ऐसे नहीं जैसा आपने किया है। एक कापी लो पैन लो कापी में जल जल लिखते रहो प्यास गुझ जायेगी। उसे तो प्यास थी ही उसने वैसा ही किया पर फिर भी प्यास नहीं बुझी तब उसने और अन्य से पूछा उसने भी कहा कि प्यास तो जल से ही बुझती है पर वैसे नहीं बुझेगी जैसा आपने किया है। ऐसा करो कि किसी जल के विशेषज्ञ को लाओ और उससे जल की कथा का श्रवण करो प्यास बुझ जायेगी। उसने वैसा ही किया। कथाकार ने अने क प्रकार के जलों का बडी मधुर वाणी से वर्णन किया उसने भी तन्मयता से सुना, पर फिर भी प्यास नहीं बुझी। उसे प्यास तो सच्ची थी इसलिये हारा नहीं। उसे बुझाने के लिये और खोज शुरू की। अब उसे एक व्यक्ति मिला उससे भी पूछा उसने कहा प्यास तो जल से ही बुझती है यह सत्य है मुझे भी प्यास लगी थी मै। अभी–अभी जल से बुझाकर आया हूँ आपको क्या करना है उसको ध्यानपूर्वक सुनना, ाहरो तो लिख लेना, जोर–जोर से उच्चारण भी कर लेना, पश्चात् मन में बार–बार दोहराते भी रहना, जिससे विवरण भूल ना जाओ, पश्चात् मन में बार–बार दोहराते भी रहना जिससे विवरण भूल ना जाओ, पश्चात् उसकी के अनुसार कर्म करोगे तो निश्चित है प्यास बुझेगी ही । तो सुनो अभी यहाँ से इस सड़क पर कुछ दूर जाना, वहाँ बाँयी ओर बड़ा वट वृक्ष है उधर मुड़कर आगे जाने पर एक लाल दरवाजे वाला मकान मिलेगा, वहां देवदत्तजी ऐसा नाम लेकर पुकारना तब देवदत्त व्यक्ति मिलेगा उससे कहना मुझे प्यास लगी है इसलिये आपका कुंआ कहां है जिसमें जल है दिखा दो और जल निकालने के लिये रस्सी बाल्टी दे दो । पश्चात् वह कुआं दिखयेगा व रस्सी बाल्टी देगा। रस्सी को बाल्टी से बांधकर कुयें में डालना जल से बाल्टी भर जायेगी उसे बाहर निकाल बाल्टी को रख रस्सी को छोड़ हाथों क अन्जली बना बाल्टी से से जल लेना व पीना प्यास बुझ जायेगी। अब उसने ध्यान से सुना उसे लिख भी लिया। जोर जोर से बोला भी और बार–बार मन में बोलकर स्मरण कर लिया और जैसा बताया था वैसा

ही करना प्रारम्भ किया। सड़क पर चला आगे जाकर बांयी ओर वट वृक्ष देखा उस ओर मुड़कर आगे बढ़ा तब लाल दरवाजे वाला मकान दीखा तब उसने देवदत्तजी ऐसा नाम लेकर पुकारा, देवदत्त बाहर आया तब उसने कुएं के लिये रस्सी बाल्टी के लिये कहा। उसने कुआं दिखाकर रस्सी बाल्टी भी दे दी। उसने बाल्टी में रस्सी बांधी व उसे कुऐं में डालकर भरी व ऊपर खींच ली। बाल्टी को रख रस्सी को छोड़कर अन्जली बनाकर जल लेकर पीया अब उसकी प्यास बुझ गई।

ठीक इसी प्रकार से आन्तरिक बुझाने का व्यवहार भी है। इसके लिये जो पूर्व में चार प्रकार के कर्म बताये हैं उनको वैसा ही अपना चाहिये। इसके लिये ईश्वर, जीव, प्रकृति के शुद्ध ज्ञान को सुनकर पढ़कर प्रथम उसको अपनी आत्मा में एकत्रित करना पश्चात् मनन, कर्म के द्वारा बुद्धि पर निश्चय बनाना। उस निश्चय को "ध्यान" के द्वारा स्थिर करना। पश्चात् व्यवहार वैसा ही करने पर इच्छित फल की प्राप्ति अवश्यमेव होगी। उपास्य एकमात्र परमात्मा ही है, साधक स्वयं जो साध्य को प्राप्त करना चाहता है वह उपासना की पद्धति अष्टांग योग है। ईश्वर की भक्ति अर्थात् उसके गुण, कर्म, स्वभावों को अपनी आत्मा में धारण करना है। इन सब बातों का संक्षेप से विवरण इसमें कर दिया है। जो भी व्यवहार रूप में इसका क्रियात्मक प्रयोग करेंगे वे अवश्य ही इच्छित फल की प्राप्ति करेंगे।

ईश्वर कृपा व सत् पुरूषों के संग से जो मिला उसका ही यह फल है। परमात्मा की कृपा से सबका कल्याण हो व क्लेशों से छूटें इसी भावना से इस लघु पुस्तिका में लिखा गया है। प्रभु परमेश्वर को ही यह अर्पित है, उनका अनेकशः धन्यवाद है, बार–बार प्रणाम है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

वैदिक नामस्मरण विधि

भूमिका

नाम स्मरण अथवा ईश्वर के नाम का जप करने की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है। परमपिता ने सृष्टि के आदिकाल में चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा के हृदयों में क्रमशः चार वेदों का ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का प्रकाश किया। सभी मनुष्य जाति के कल्याण के लिये जप विधि का विधान भी दिया। परन्तु अब महाभारत काल के पश्चात् वैदिक विद्वानों के न रहने पर जप के अनेकों अवैदिक विधान प्रचलित हो गये। जैसे माला के साथ संख्या गिनते हुए जप करना। आगे जाकर अनेकों प्रकार के मत मतान्तर फैल गये । परन्तु वह जप की प्राचीन परम्परा विकृत रूप से सभी में विद्यमान रही । ईसाई, इस्लाम, जैन, बौद्ध हिन्दू आदि सभी में जप विधि का प्रचलन आज भी है। ईश्वर के नाम तो अनेक हैं पर मुख्य नाम 'ओम्' है। पहले मुख्य नाम का ही विधान था। परन्तु बाद में गुण वाचक नामों के जप का भी प्रचार हुआ। बिगड़ते–बिगड़ते तो ईश्वर का नाम छोड़कर महापुरूषों के नामों का ही जाप करने लगे। वर्तमान् में तो तथाकथित गुरू अपने–अपने नाम के जप को ही सही कहते हैं। मात्र शब्दोच्चारण वा स्मरण मात्र से पापों का छूटना व पुण्य का लाभ मानते हैं। यही नहीं जो जितनी संख्या में जप करेगा उसे उतना विशेष पुण्य लाभ होगा। इसी प्रकार लिखने पर भी वहीं फल होगा। इसमें फल मुक्ति की कपोल कल्पित कथाओं का भी उल्लेख करते हैं। जैसे जीवन में एक व्यक्ति बड़ा पापी या मांस, मदिरा, व्यभिचार, चोरी आदि सभी दुष्कर्म करता था। प्रभु का नाम कभी भी स्मरण नहीं करता था। उसने सुना की अन्त समय में यदि कोई प्रभुनाम का स्मरण कर लेवे तों सभी पापों से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। इस विचार से अपने

सबसे प्रिय बेटे का नाम नारायण रख लिया। मृत्यु के समय अपने उस बेटे को बुलाया। उसको नाम का उच्चारण कर बुलाया नारायण और ऐसा कहते हुए उसके प्राण चले गये। तब उसे देवदूत स्वर्ग में ले गये। यह शाश्वत् सिद्धान्त है कि किये कर्म का फल अवश्यमेव भोगना ही पड़ता है। भोगे बिना नहीं छूटता है । अतः यह असंभव बात है और ऐसी मान्यताओं से समाज में पापाचार की वृद्धि ही होगी। अतः वेदादि सत्य शास्त्रों के आधार पर व प्राचीन ऋषि मुनियों के लेखों में जो जप का वैदिक विधान है उसको समस्त मानव जाति के हितार्थ संक्षेप में लिखा जा रहा है।

यह लघु पुस्तिका सभी मनुष्य जाति के लिये हितकारी है, ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है, जीव सत्चित स्वरूप है और प्रकृति सत् स्वरूप है प्रत्येक जीव दुःख से छूट कर आनन्द को चाहता है पर वह इच्छा प्रकृति के विषय रस से कभी भी पूर्ण नहीं होगी। कोई भी जीव आनन्द स्वरूप नहीं है सभी दुःख से छूटना व आनन्द की इच्छा वाले हैं। अतः उनसे भी इच्छापूर्ति संभव नहीं है । एकमात्र परमेश्वर ही आनंद स्वरूप व समस्त दुःखों से रहित है व अपने भक्तों को भी अपने ज्ञान,बल,आनन्द को देने व उनके दुःखों को हटाने में सक्षम है। पर उसकी भक्ति के लिये जो जप विधान का निर्देश दिया है। उसके क्रियान्वयन के स्वरूप के छूट जाने से मनुष्य जाति जप करते हुए भी लाभ नहीं ले पा रही है। अतः यही सभी के मन्तव्य को सिद्ध करने वाली है।

इसे ध्यान पूर्वक पढ़ें उस पर मनन करें, उसका बुद्धि पर निश्चय बनाये व उसको क्रियान्वित करें तो अवश्यमेव सभी सत्य कामनाएं पूर्ण होगीं। मैनें स्वयं ने उसकी परीक्षा करके देखा है और वही फल पाया है जो वेदादि सत्य ग्रन्थों व ऋषि मुनियों ने बताया है।

ईश्वर कृपा से सभी इससे लाभान्वित हों इसी भावना के साथ यह लिखा है। परमेश्वर की कृपा से सभी दुःख से छूट उनके आनंद को प्राप्त करें।

प्रभु सेवक
स्वामी अमृतानंद सरस्वती

ओ३म्

स्वभाव से ही सभी जीव सुख चाहते है परन्तु दुःख कोई भी नहीं चाहता है **यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है अर्थात् सभी देशों में, सभी कालों में, सभी परिस्थितियों में सभी प्राणियों का यही स्वभाव होता है।**

मनुष्य को छोड़ अन्य शारीरधारी इसको सिद्ध नहीं कर सकते क्योंकि उनके पास विशेष बुद्धि नहीं होती है, पर मनुष्य चाहे तो सुख पाने व दुःख हटाने में सफल हो सकता है। परन्तु मनुष्यों में जो विचारवान् नहीं होते वे भी सिद्ध नहीं कर सकते हैं।

सत्यासत्य को जानने के लिये विचारवान् होना होगा। उसके लिये यह विचारना होगा कि जो मैं दुःख हटाना चाहता हूँ , व सुख पाना चाहता हूँ वह कैसे सिद्ध होगा । प्रायः सभी मनुष्य सांसारिक विषयों के सुख को लेते हैं। पर वह छूट जाता है ठहरता नहीं इसके विपरीत बार–बार विषय सुख लेने पर भी तृप्ति नही होती है उल्टे अतृप्ति बढ़ती जाती है, और अन्त में जब सुख साधन व शरीर भी छूटता है तो महान् दुःख ही होता है यह तो विषय सुखों की कथा है अर्थात् यथार्थ सभी की अनुभूति है।

अब दुःख को देखते है–दुःख आते हैं उसे हटाते भी हैं पर पुनः आ जाता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जीवन व्यतीत होता रहता है और अन्त में जरा, व्याधि, मरण दुःख आते ही हैं इसको कोई भी अभी तक बाह्य साधनों से हटा नहीं सके हैं इसे भी सभी जानते हैं।

तब क्या यह अभिलाषा पूर्ण नहीं होगी। वेदादिसत्य ग्रन्थों ऋषि मुनियो, महापुरूषों ने अपने अनुभव के आधर पर बताया है कि एक मात्र परमेश्वर की उपासना अर्थात् भक्ति ही ऐसा साधन है जिसे अपनाने पर दुःख से छूटना व सुख को प्राप्त होना संभव हो सकता है क्योंकि एक मात्र परमेश्वर ही सभी दुःखों से रहित व पूर्णानन्द युक्त है जो अपने उपासकों के भी दुःखों को हटाकर अपने ज्ञान,बल,आनन्द को

देने में समर्थ है। इसके लिये और कोई दूसरा उपाय है ही नहीं क्योंकि न तो उसके समान न उससे श्रेष्ठ कोई है वह अनुपम है । जो भी मनुष्य उसकी उपासना (भक्ति) करेगा वह अवश्यमेव फल पायेगा। उपासना की पद्धति का एक मात्र उपाय योग ही है, जिसे महर्षि पतज्जलि ने कहा है

क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टःपुरूष विशेष ईश्वरः (योग 1/24)

अर्थात् जो अविद्यादि पांच क्लेश और अच्छे बुरे कर्मों की जो–जो वासना, इन सबसे जो सदा अलग और बन्ध रहित है, उसी पूर्ण पुरूष को ईश्वर कहते हैं। फिर वह कैसा है ? जिससे अधिक वा तुल्य पदार्थ कोई नहीं तथा जो सदा आनन्द, ज्ञानस्वरूप, सर्वशक्तिमान् है, उसी को ईश्वर कहते है। (ऋ.भू.उपासना)
पुनः आगे कहते हैं :–

स एष पूर्वेषामपि गुरूः कालेनानवच्छेदात् (योग–1/26)

जो कि प्राचीन अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि पुरूष सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुये थे, उनसे लेकर हम लोग पर्यन्त और हमसे आगे जो होने वाले हैं, उन सबका गुरू परमेश्वर ही है, क्योकिं वेद द्वारा सत्य अर्थों का उपदेश करने से परमेश्वर का नाम गुरू है। (ऋ.भू.वेदानां नित्यत्व) उसके नाम के विषय में भी कहा हैं –

तस्य वाचकः प्रणवः (योग.द. 1/27)

सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान व निज नाम 'ओ3म्' को कहा है अन्य सब गौणिक नाम है **(स.प्र.प्र.समु.)** उसकी उपासना वा भक्ति कैसे करनी चाहिये इसको भी बताया है –

तज्जपस्तदर्थ भावनम् (योग द. 1/28)

इसी नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिये कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो, जिससे उसके हृदय में परमात्मा का प्रकाश और परमेश्वर की प्रेम–भक्ति सदा बढ़ती जाये।

अज्ञानतावश आज नाम स्मरण अथवा जप का विधान किस प्रकार करते व उसका फल क्या मानते हैं तो देखने पर ज्ञात होता है कि कोई–कोई जोर–जोर से नामोच्चारण करता है, तो कोई माला के द्वारा संख्यापूर्वक जप करता है, तो कोई कॉपी में संख्या पूर्वक लिखने को जप मानता है, तो कोई – कोई नाम संकीर्तन करके या सुनकर ही अपने को कृत्य कृत्य मानता है और उतना–उतना करके ही ऐसा मानते है कि हमारी भक्ति पूर्ण हो गई है अब परमेश्वर हम पर कृपा करके हमारे दुःख हटा देगा, सुख प्राप्त करायेगा, हमारी सोची हुई मनोकामना पूरी हो जायेगी, हमें पुण्य लाभ मिलेगा आदि–आदि मान्यतायें क्या ऐसा करने मात्र से ऐसी–ऐसी सिद्धि होना संभव है इसको एक उदाहरण से विचार करके देखते हैं –

एक व्यक्ति था उसे प्यास लगी पर उसे इसका ज्ञान नहीं था कि यह बुझेगी कैसे, जब उसने खोज की उसे एक व्यक्ति मिला व उसे अपनी समस्या बताई तब उसने कहा कि जल–जल का जोर–जोर से उच्चारण करो प्यास बुझ जायेगी। उसने वही कार्य किया पर प्यास बुझी ही नहीं। तब उसने प्यास बुझाने के लिये और खोज की एक व्यक्ति मिला उसने पूछा तुमने क्या किया तब अपना वृतान्त बताया कि देखो एक माला लो और जल–जल ऐसा जप करो तो बुझ जायेगी। उसने वैसा ही किया फिर भी प्यास नहीं बुझी। प्यास तो लगी ही थी। फिर खोज की तब एक व्यक्ति मिला उससे पहली बातों को पूछा और कहा अरे भाई आप एक कॉपी लो व उससे जल–जल ऐसा लिखते रहो तो प्यास बुझ जायेगी। उसने वैसा ही किया परन्तु फिर भी प्यास नहीं बुझी। तब फिर खोज की एक व्यक्ति मिला उससे पूछा व पुराना वृतान्त बताया उसने कहा भाई ऐसा करो किसी जल के विद्वान को लाओं उससे जल की कथा सुनो उससे अवश्य प्यास बुझ जायेगी। तब परिश्रम करके जल के विद्वान को लाया व उससे कथा सुनी उसने जलाशयों नदियों, झरनों आदि के जलों का बड़ी उत्तमता से वर्णन किया पर फिर भी उसकी प्यास नहीं बुझी। परन्तु प्यास तो लगी ही थी अतः फिर खोज में लगा अब एक व्यक्ति मिला जिसने अपनी प्यास बुझाई थी, उसने

उसके पूर्व के उपायो को जाना और कहा भाई ऐसे से प्यास नही बुझती हैं । देखो मैं आपको बताता हूँ कि प्यास तो जल से ही बुझती है पर उसके शब्द मात्र के उच्चारण, जप, लेखन वा कथन श्रवण मात्र से नहीं । अब ऐसा करो आप इस स्थान से सीधे रास्ते पर लगभग एक किलोमीटर जाना तब आपको एक लाल दरवाजे का मकान मिलेगा वहां आप देवदत्त जी ऐसा कह कर पुकारना वह आयेगा उसे अपनी समस्या बताना। वहां एक कुंआ है वहीं पर रस्सी युक्त बाल्टी रखी है उससे पूछकर कुएं से पानी निकाल लेना और उसे पी जाना प्यास बुझ जायेगी। अब ध्यानपूर्वक उसे सुना उसे लिखा भी, उसका स्मरण भी किया जोर–जोर से बोलता भी रहा. व बताये अनुसार चलना प्रारम्भ किया जब यथा स्थान जाकर दरवाजे पर देवदत्त जी कहकर पुकारा वह व्यक्ति बाहर आया उसने समस्या सुनी व कुंए की ओर संकेत करके कहा कि वह रस्सी बाल्टी है कुंए से पानी निकालो और पियो प्यास बुझ जायेगी। उसने वैसा ही किया अब उसकी प्यास बुझी यह यथार्थ विधि है उच्चारण, नामस्मरण, श्रवण, लेखन आदि कर्म करके उसके अनुसार कर्म करने का विधान तब उससे यथायोगय लाभान्वित हुआ जाता है अन्यथा नही।

किस नाम का जप करें इस पर भी बड़े मतभेद हैं। कोई किसी के नाम को कहता तो कोई किसी के नाम को कहता है और सभी अपनी – अपनी बात को ही ठीक कहते हैं। अनेक मत मतान्तर सब अपनी बात बताते अब किस नाम का यथार्थ में जप करना चाहिये उस पर भी विचार करते हैं। एक उदाहरण से उसे भी समझने का प्रयास करते है– नाम है समुद्र पर पदार्थ है विशाल जल राशि तो एक है वाचक शब्द दूसरा है वाच्य पदार्थ समुद्र का जल वाष्प बनकर आकाश में बादल में रूप में परिवर्तित हो जाता है और समय पर वर्षा होती है तो कहते हैं यह बादल का जल है। वही बादल का जल जब नदी, तालाब, कुंए आदि में जाता है तब उस जल का नाम नदी का, तालाब का कुंए का जल हो जाता है। जब घर में घड़े में भरकर रखा जाता है तो घड़े का जल ऐसा कहते हैं। वही जल जब गिलास में दिया जाता है तो कहते

हैं गिलास का जल पर जल तो बस जल ही है न वह गिलास का न घड़े का न ही नदी, तालाब, कुंए का न ही बादल का है पर अज्ञानतावश ऐसा कहते हैं। तब कोई गिलास को स्त्रोत मानकर उसी की देखभाल करे तो जल नहीं मिलेगा। परमेश्वर एक ही सबका स्वामी है वही सब एक मात्र सर्वज्ञ अर्थात् पूर्ण ज्ञानी है। सब उत्तम, गुण, कर्म, स्वभाव उसी के हैं। किसी भी महापुरूष में जो भी उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव हैं सब उसी के हैं। उसी की उपासना करके प्राप्त किये हैं। अब भूल से लोगों ने व्यक्तियों की उपासना प्रारम्भ कर दी उनमें जो उत्तम, गुण, कर्म, स्वभाव हैं उनकी नहीं अर्थात् उनके नाम का मात्र उच्चारण करना, जप करना, नाम को लिखना उसका श्रवण आदि कार्य करना व इसी से सब फलों की प्राप्ति होती है व पाप कर्म छूट जाते ऐसा मानते हैं। ये अशुद्ध मान्यताएं हैं। इसीलिए लोक में कुछ बातें प्रचलित हुई कहा जाने लगा– 'मुख में राम बगल में छुरी' ऐसे नाम स्मरण को निरर्थक बताया और भी कहते हैं– 'बड़ा बगुला भगत है' अर्थात् बाह्य वस्त्र मांला तिलक लगाना, मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरूद्वारा आदि जाना कथा उपदेश सुनना, पुस्तक पढ़ना आचरण न सुधारना। बगुला, नदी के किनारे जाकर एक टांग पर खड़ा रहता है और बड़ा ध्यान मग्न रहता है कोई ऐसी स्थिति को देखकर उसे समझता है कि यह कितनी भक्ति में लीन है पर ज्यों ही मछली आती तत्काल उसे पकड़ कर खा जाता है । इसी प्रकार जो व्यक्ति नाम स्मरण, जप, लेखन, पढ़न,श्रवण, तो करता है पर अपने आचरण नहीं सुधारता तो उसके इस कर्म का फल कभी भी पुण्य नहीं बनेगा उल्टे जो कर्म करेगा वे फल तो बनने ही हैं। इसलिये सभी को एक मात्र परमेश्वर के ही नाम का स्मरण करना व उनके गुणों के अनुसार अपने में भी गुण धारण करना ही सच्चा नाम स्मरण होता है।

मनुष्य समाज में यह संस्कार अत्यन्त मिथ्या व्याप्त है कि हम परमेश्वर के गुण,कर्म, स्वभाव को कभी भी धारण नहीं कर सकते हैं। हमारा काम तो मात्र नाम स्मरण ही है साथ में यह भी कहते हुये देखे जाते हैं कि कलियुग में तो बस एक ही उपाय है नाम स्मरण 'कलियुग

में एक नाम आधार'। दूसरी विडम्बना यह है कि कुछ सामर्थ्यवान पुरूषों ने ईश्वर के कुछ–कुछ गुण कर्म स्वभावों को धारण भी किया तो उनको एक अलग कोटि में रख दिया। उन्हें 'अवतार, पैगम्बर, नबी, फरिश्ता, ईश्वर का एक मात्र पुत्र आदि कहकर उनके नाम स्मरण में पुण्य व कृ तकृत्यता मानने लगे। इससे सम्पूर्ण मानव जाति को महान् हानि हो रही है। वे ईश्वर से उपकार ग्रहण करने में असमर्थ हो रहे हैं। इसके विपरीत अत्यन्त दुखों को भोगते जा रहे हैं।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी ने कहा है कि ईश्वर को मानना अर्थात् उसकी भक्ति करना अर्थात् उसकी ही आज्ञा पालन करना। भक्ति, उपासना का अर्थ है कि उनके आधीन रहकर उनके अनुसार आचरण बनाना इसलिये महर्षि दयानन्द जी ने अपने अमर ग्रन्थ **सत्यार्थ प्रकाश** में वेदादि सत्य शास्त्रों व आप्तपुरूषों के अनुकूल स्पष्ट रूप से सम्पूर्ण मानव जाति के हित में लिखा है। सप्तम सम्मुल्लास में नामस्मरण के फल को बताते हुए कहते हैं जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव हैं वैसे अपने भी करना । जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवें। और जो केवल भाण्ड के समान गुण,कीर्तन करता जाता है और अपना चरित्र,नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है इसी प्रकार एकादश सम्मुल्लास में लिखते हैं मात्र नामस्मरण से कुछ फल नहीं होता जैसे कि मिश्री–मिश्री कहने से मुख मीठा नहीं होता और नीम–नीम कहने से कड़वा नहीं होता किन्तु जीभ से चखने पर मीठापन व कड़वापन जाना जाता है।

प्रश्न – क्या नाम लेना सर्वथा अनुत्तम है जो सर्वत्र पुराणों में नाम स्मरण का बड़ा महात्म्य लिखा गया है ?

उत्तर – नाम लेने की रीति उत्तम नहीं जिस प्रकार तुम स्मरण करते हो यह रीति झूठी है।

प्रश्न – हमारी रीति कैसी है ?

उत्तर – वेद विरूद्ध

प्रश्न – भला हमें आप अब वेदोक्त नामस्मरण की रीति बतलावे ?

उत्तर – नाम स्मरण इस प्रकार करना चाहिये जेसे न्यायकारी ईश्वर का एक नाम है सो जो इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपातरहित होकर परमात्मा सबका यथावत् न्याय करता है वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

इसी प्रकार इसी सम्मुल्लास में अन्यत्र भी लिखा है नाम स्मरण इसको कहते हैं कि –

यस्य नाम महद्यशः (यजु.)

परमेश्वर का नाम बड़े यश अर्थात् धर्म युक्त कामों का करना है। जैसे ब्रह्मा परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान आदि नाम परमेश्वर के गुण,कर्म, स्वभाव से हैं। जैसे ब्रह्मा सबसे बड़ा परमेश्वर ईश्वरों का ईश्वर ईश्वर सामर्थ्य युक्त, न्यायकारी अन्याय नहीं करता, दयालु सब पर कृपादृष्टि रखता है, सर्वशक्तिमान् अपने सामर्थ्य ही से सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता, सहाय किसी का नहीं लेता, ब्रह्मा विविध जगत के पदार्थों का बनाने वाला, विष्णु सबमें व्यापक होकर रक्षा करता है, महादेव सब देवों का देव, रूद्र, प्रलय कराने वाला आदि नामों को अपने में धारण करें । अर्थात् बड़े कामों से बड़ा हो, समर्थों में समर्थ हो, सामर्थ्य को बढ़ाता जाये, अधर्म कभी न करें, सब पर दया रखे, सब प्रकार के साधनों से समर्थ रहे, शिल्प विद्या से नाना प्रकार के पदार्थों को बनाये सब संसार में अपने आत्मा के तुल्य सुख–दुःख समझे, सबकी रक्षा करे विद्वानों में विद्वान हो, दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड और सज्जनों की रक्षा करे इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का नामस्मरण है। आज इसके विरूद्ध ही कार्यप्रचलित हैं व समाज में भी भ्रमवश मात्र नामस्मरण को करना ही भक्ति माना जा रहा है। ध्वनि विस्तारक यन्त्रों पर वाद्य यन्त्रों के साथ घन्टे ही नहीं रात–रात भर गुण कीर्तन भक्ति के नाम पर करते रहना और चाय–बीड़ी सिगरेट, तम्बाकू, भांग, गांजा, मदिरा आदि बुद्धि एवं शरीर नाशक पदार्थो का सेवन

करना भी भक्ति मानते हैं। मांसाहार, झूठ चोरी, व्यभिचार, अश्लील चित्र, तथा कथाओं को पढ़ना, विषय भोगों का यथेच्छ भोगना मिलावट करना घूस लेना आदि भी सब कार्य चलते रहना तब भी वह अपने आप को नाम स्मरण मात्र से भक्त मानता है।

यास्क ऋषि भी नाम मात्र का जप करना और गुण धारण न करने वालों की स्थिति को बताते हुए कहते हैं –

स्थाणुरयं भारहारः,किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूत पाप्मा।।

(नि. 1/18)

यह निरूक्त में मन्त्र है। जो वेद को स्वर और पाठ मात्र पढ़के अर्थ नहीं जानता, वह जैसा वृक्ष डाली, पत्ते,फूल और अन्य पशु धान्य आदि का भार उठाता है, वैसे भारवाह अर्थात् भार का उठाने वाला है, और जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है, वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़ पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है।

परमेश्वर स्वयं वेद में भी इसको बताते हैं –

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेदकिमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।

ऋ.मं.1/सू. 164/म. 39

जिस व्यापक अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर में सब विद्वान और पृथिवी सूर्यादि सब लोक स्थित हैं कि जिसमें सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है , उस ब्रह्मा को जो नहीं जानता, वह ऋग्वेदादि से क्या कुछ सुख को प्राप्त हो सकता है ? नहीं–नहीं किन्तु जो वेदों को पढ़के धर्मात्मा योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं, वे सब परमेश्वर में स्थित होके मुक्ति रूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं और वेदों में परमात्मा के द्वारा कहा गया हैं अज्ञानी लोगों के सुनना, देखना, बोलना का फल देता है अर्थात् जो विचार नहीं करते है, परन्तु जो ज्ञानी सुने, देखे व बोले हुए

को विचार करके सत्य को ग्रहण व असत्य को छोड़, सत्यानुकूल आचरण करते उसका क्या फल होता है–

उत त्वः पश्यन्त ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पन्थ उशती सुवासाः।।

जो अविद्वान हैं वे सुनते हुए नहीं सुनते, देखते हुए नहीं देखते, बोलते हुए नहीं बोलते अर्थात अविद्वान इस विद्या वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते। किन्तु जो शब्द अर्थ और संबंध को जानने वाला तथा क्रिया सहित करने वाला है, उसके लिए विद्या जैसे सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण करती अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है वैसे विद्या विद्वान के लिये अपना स्वरूप प्रकाश करती है अविद्वानों के लिये नहीं ।

वेद में ईश्वर को स्मरण करने का विधान है।

ओम क्रतो स्मर ।। यजुर्वेद 40/15

हे कर्म करने वाले जीव ! (ओम्) इस नाम का स्मरण अर्थात् जप कर।

मुण्डकोपनिषद् में ओम् के जप की विधि इस प्रकार दी है –

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमन्तेन वेद्धत्यं शखन्तन्मये भवेत्।। मुण्डकोपनिषद् 22/4

प्रणव (ओम्) धनु है, बाण आत्मा, ब्रह्म उस आत्मा का लक्ष्य है, प्रमाद रहित होकर उस लक्ष्य का बेध करें तब जिस प्रकार शर शरलक्ष्य में प्रवेश करता है, वैसे ही जीवात्मा ब्रह्म में प्रवेश करे।

जप के विधान को बताते हुए मनु स्मृति में कहा गया है –

विधियज्ञाज्जप यज्ञो विशिष्टो दशभिर्गृणैः ।
उपांशुः स्याच्छनगुणः सहस्त्रो मानसः स्मृतः।।(मनु. 2/85)

अग्नि होत्र करने से जप करना दस गुणा अधिक फल देता है परन्तु बोलकर जप करने से (उपांशुः) जो दूसरे को सुनाई न देवे और होंठ

हिलते रहें ऐसा सौ गुणा श्रेष्ठ होता है। परन्तु वाक् इन्द्रिय व्यवहार से शून्य मानसिक जप बहुत शान्त होकर और अन्तर्मुख होकर करना हजारो गुणा श्रेष्ठ होता हैं परन्तु आज के उपासक की दशा विपरीत होती जा रही है, प्रथम तो ओंकार के जप के स्थान पर दूसरे ही नामों का उच्चारण करते है और वह भी ध्वनि विस्तारक यन्त्र लगाकर । अतएव नाम स्मरण वा जप वैदिक पद्धति से योगाभ्यास रीति से निम्न प्रकार से करना चाहिये–

सर्व प्रथम जप करने वाले व्यक्ति को व्यवहार में अष्टांग योग का पालन करना चाहिये। जो अभ्यासी व्यवहार में यम नियमादि का पालन नहीं करते, उन्हें जप में सफलता नहीं मिलती ।

यम पांच है जिन्हें महाव्रत कहते हैं :

1. **अहिंसा** – सब प्राणियों के साथ वैर भाव छोड़कर प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना।
2. **सत्य** – जैसा मन में वैसा वाणी में व वैसा ही कर्म में करना झूठ कभी न बोलना।
3. **अस्तेय** – चोरी न करना सत्य व्यवहार रखना।
4. **ब्रह्मचर्य** – लम्पट न होना जितेन्द्रिय रहना।
5. **अपरिग्रह** – निरभिमानी रहना अभिमान कभी न करना।

नियम भी पांच है :

1. **शौच** – बाहर जलादि से भीतर राग द्वेष से रहित रहना।
2. **संतोष** – धर्म युक्त पुरूषार्थ से लाभ में न प्रसन्न व हानि में न अप्रसन्न होना, आलस्य कभी न करना।
3. **तप** – प्रसन्नता पूर्वक सुख–दुःख, हानि–लाभ, मान–अपमान आदि द्वन्दों को सहन करते

हुए धर्माचरण ही करना अधर्माचरण कभी न करना।

4. **स्वाध्याय** – वेदादि सत्य ग्रन्थों को पढ़ना–पढ़ाना। सज्जनों का संग व परमेश्वर के मुख्य नाम ओम् का अर्थ पूर्वक नित्य प्रति विचार करना।

5. **ईश्वर प्रणिधान** – परमेश्वर की आज्ञा में समर्पित रहना।

जब जप करना हो तो शुद्ध,शांत, एकांत देश में किसी ऊन वा सूत के आसन को बिछा उस पर शरीर को स्थिर करके बैठना पश्चात् कम से कम 3 प्राणायाम् करना, प्राणायाम की विधि–नासिका द्वारों से प्राणों को बाहर फेंक बाहर ही रोक दें जब थोड़ी घबराहट हो तब धीरे–धीरे नासिका द्वारों से भीतर भरना। भर कर बाहर पुनः फेंकना यह एक प्राणायाम हुआ ऐसे कम से कम तीन करें। पश्चात् इन्द्रियों के व्यवहार को छोड़ देवे व मन को स्थिर करें इसके अभ्यासी व्यक्ति को प्रथम निम्न प्रकार से अभ्यास करना चाहिये।

1. प्रथम स्तर – धीरे–धीरे नासिका द्वारों से प्राणों को पूरा भीतर भर लेवें पश्चात् मुख खोलकर ओम् शब्द का लम्बा उच्चारण करें व जो ध्वनि हो उस पर ही रहें। ऐसा तीन बार करें।
2. द्वितीय स्तर – पूर्ववत् ही सब कार्य होगा परन्तु अब अन्तर यह होगा कि मुख खोलकर उच्चारण न करके कण्ठ से उच्चारण करेंगें और जो ध्वनि होगी उसी ध्वनि पर रहेंगें।
3. तृतीय स्तर – इसमें न मुख खोलकर और न ही कण्ठ से किसी प्रकार से ध्वनि करना है अब प्राणों को भरते हुए व छोड़ते हुए मानसिक स्तर पर 'ओम्' शब्द का उच्चारण करना है।

4. चतुर्थ स्तर – अब किसी प्रकार का न बाह्य ध्वनि पूर्वक उच्चारण न मानसिक उच्चारण करना। स्वाभाविक रीति से जो प्राण चल रहे हैं। भीतर आते हैं व बाहर जाते उसको जानना और किसी प्रकार की कोई क्रिया नहीं करनी है

ऐसी स्थिति का निर्माण कर लेवे अब चित्त शांत व स्थिर होकर ठहर गया है। जब अभ्यास करते करते चित्त पर अधिकार हो जाता है। तब सीधे ही चित्त को ठहराकर जहां इच्छा हो ह्दय देश, कंठ प्रदेश, नासिका का अग्र भाग, भ्रूमध्य आदि पर ठहराकर अगला अभ्यास जप का कर सकते है।

अब जो अभ्यास नाम स्मरण का करना है उसके भी चार भाग हैं – अ) शब्द, ब) अर्थ, स) संबंध, द) भाव

अब इसकी विधि बताते हैं –

अ) प्रथम–शब्द – नाम ओम्।

ब) द्वितीय शब्दार्थ – यह परमेश्वर का मुख्य नाम है जिसके साथ अन्य सभी नाम लग जाते हैं । पर ऐसे कहने मात्र से अन्य नाम नहीं आ जाते हैं। उदाहरण के लिये परमात्मा के अनेक गुण हैं। इस कारण उसके गुण वाचक नाम भी अनेक हैं परन्तु वे सभी नाम मुख्य नाम ओम् में ही आ जाते हैं जैसे परमेश्वर ने ही समस्त ब्रह्माण्ड व सभी जीवों के शरीरों का निर्माण किया है इस निर्माण करने से उसका गुण वाचक नाम ब्रह्मदेव है। यह नाम भी मुख्य ओम् नाम में ही लग जाता है। ऐसा विचार करना शब्दार्थ हुआ ।

प्रथम चाहें तो ओम् नाम का शांतचित्त हो मुख से लम्बे स्वर के साथ उच्चारण कर लेवें पश्चात् मानसिक स्तर पर उसके किसी एक गुण वाचक शब्दार्थ पर विचार करें जैसे ऊपर ब्रह्मदेव गुण वाचक नाम को बताया है।

स) संबंध – प्रायः व्यक्ति ये दो काम तो करता है परन्तु ज्ञान विशेष

न होने के कारण संबंध स्थापित नहीं कर पाता अतः फल भी विशेष नहीं बनता है। अब संबंध कैसे बनाते है उसको ध्यान पूर्वक समझे –

हे परमात्मा आपका मुख्य नाम ओम् है आप समस्त ब्रह्माण्ड व जीवों के शरीरों का निर्माण करने वाले हो इसी गुण के कारण आपका गुण वाचक नाम ब्रह्मदेव है यह नाम भी आपके मुख्य नाम के साथ ही लग जाता है। हे देवता यह जो मेरा शरीर है यह भी तो आपके द्वारा ही निर्मित है। आपका ही दिया हुआ है मेरे जो अन्य शरीरों से जैसे माता–पिता, भाई –बहन, पत्नी, पुत्र, पुत्रि, पति, पुत्र, पुत्रि आदि से संबंध उन सब शरीरों का निर्माण भी तो आपने ही किया। जो भी मेरे पास चल अचल सम्पत्ति है। वह भी तो आपकी कृपा से ही प्राप्त है। मैं अभी तक आपसे संबंध नहीं बना पाया था। इस शरीर को ही मैं मानता था व इससे संबंधित शरीरों व चल अचल सम्पत्ति को भी मेरा मानना था यह मिथ्या ज्ञान था। अब संबंध जोड़ने पर मुझे यथार्थता का पता चला है।

जब नाम स्मरण वाला व्यक्ति ऐसा संबंध स्थापित करेगा तो आसक्ति शरीर परिवार व चल–अचल संपत्ति में थी वह शिथिल होती जायेगी इन सब का अपने को स्वामी नहीं मानेगा ईश्वर के दिये हुए हैं ईश्वर का मानकर मोह बन्धन को शिथिल करने में समर्थ होकर प्रयोगकर्त्ता ही मानेगा।

द) भाव – नाम स्मरण का एक भाग नामोच्चारण हुआ, दूसरा भाग शब्दार्थ का हुआ व तीसरा सबंध का हुआ अब सबसे अधिक महत्व भाव का है। भाव में क्या विचार करना है उसे समझें –

नाम स्मरण वाला व्यक्ति जिज्ञासा कर रहा है हे प्रभु! आपने यह शरीर व अन्य शरीर तथा सांसारिक जो कुछ चल अचल सम्पत्ति प्राप्त कराई है इसका क्या प्रयोजन है यह क्यों दी गई है ? परमात्मा ने वेदों में इसका प्रयोजन दिखाया ऋषि महर्षियों ने भी उस प्रयोजन को सिद्ध कर हमारे लिए बताया है सभी जीव दुःख से छूटना व सुख को प्राप्त करना चाहते हैं । यह शरीर व संसार की समस्त वस्तुएं उसी को सिद्ध

करने के लिए दी है। इनका ईश्वर आज्ञा के अनुकूल उपयोग करने पर बन्धन से छूटना होगा और साथ ही परमेश्वर अपने ज्ञान, बल, आनन्द को भी देगा। जो वेदों के अर्थों को समझ करके ऋषियों ने बताया है उसमें दो प्रकार की बातें एक विधि वाचक अर्थात् जो करणीय है दूसरी निषेध वाचक जो नहीं करना हैं और वैसा करने पर प्रयोजन की सिद्धि होती है अर्थात् ईश्वर आज्ञा का पालन हमारे कल्याण का हेतु है तब यह वरदान बन जाता है पर यदि उसे भंग करेंगे तो दुःखों का बढ़ना व सुखों का घटना होगा। शरीर व संसार जो मिला है वह हमारे स्वयं की अर्जित कमाई का फल है जो परमात्मा ने हमें दी है पर साथ दयालु परमेश्वर ने विधान भी दे दिया है कि इस तुम्हारी अपनी सम्पत्ति का ऐसा उपयोग करोगे तो दुःख पाओगे यदि ऐसा करोगे तो दुःखो से छूटकर आनन्द को प्राप्त करोगे। अब हम स्वतंत्र हैं जैसा चाहे उपयोग करें। ज्ञान होने पर कोई भी कभी भी दुरूपयोग नहीं करेगा। अज्ञानी व्यक्ति दुरूपयोग कर दुःखों को बढ़ायेगा। वेदों के अनुसार ही ऋषियों ने कहा है कि जो परमात्मा का शरीर मान लेगा वह व्यक्ति इस शरीर से चोरी, हिंसा, व व्यभिचार कभी नहीं करेगा। इसके विपरीत यथा योग्य धर्म पूर्वक कमाकर दान करेगा। दुःखियों पर दया करेगा दुःख किसी को नही देगा, शरीर पर संयम रखेगा ब्रह्मचर्य का पालन करेगा। इसी प्रकार जो–जो कर्त्तव्य कर्म जिसके लिये बताये उनके लिये वह वह करेगा और किसी से भी किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं रखेगा। अपने को सेवक एक मात्र परमेश्वर को स्वामी मानकर उसके बताये अनुसार की कार्य करेगा।

अब जो नामस्मरण कर रहा है उसके चित्त पर ईश्वर के प्रति यथार्थ भाव उठेंगे। वह ईश्वर के सम्मुख स्वयं को और स्वयं के सम्मुख ईश्वर को ज्ञान से मानता हुआ ये भाव अपनी आत्मा में उठायेगा व जो जो उसने विचारा है उस ज्ञान का बुद्धि पर निश्चय बनायेगा। उस निश्चय को स्थिर करना ही ध्यान है। जो पूर्व में मिथ्या धारणाओं के कारण मिथ्या ज्ञान था व तदनुकूल मिथ्या ध्यान था व उस मिथ्या ध्यान के ज्ञानानुसार ही कार्य करता था मैं मेरा मानकर मनमानी कर रहा था।

अब यथार्थ ज्ञान बना है जो वह नामस्मरण करने वाला नाम जप करने वाला निश्चय परमात्मा के सम्मुख कर रहा है– हे प्रभु आपकी महान् कृपा से मुझे शुद्ध ज्ञान बना है। इस शरीर व संसार पर आपका ही स्वामित्व था है व रहेगा। अभी तक मैं – मैं व मेरा–मिथ्या मान रहा था। आपकी दया से अब जान गया हूँ व निश्चय करता हूँ कि इस शरीर से चोरी, हिंसा व व्यभिचार कर्म कभी नहीं करूंगा इनको छोड़कर अब दान, दया व संयम का व्यवहार अपनाऊँगा आप मेरी इस बुद्धि को पवित्र करके स्थिर करें यही प्रार्थना है।

यह नामस्मरण, वैदिक योगाभ्यासानुसार जब व्यक्ति करेगा तब जीवन में जो व्यवहार पूर्व में कर रहा था बदल जायेगा और अब नामस्मरण के भावयुक्त ज्ञान से जो ध्यान निर्मित किया था उसके अनुसार कर्म करेगा। तब अवश्य ही दुःखों से छूट प्रभु के ज्ञान आनन्द व बल को प्राप्त करेगा।

इसी प्रकार और भी गुण वाचक नाम हैं उनका जप भी इसी प्रकार शब्द,शब्दार्थ संबंध व भाव युक्त करना चाहिये जैसे–

शब्द – विष्णुदेव

शब्दार्थ – जो समस्त ब्रम्हाण्ड में व्यापक होकर सब का नियन्त्रणकर्ता व पालक इस गुण के कारण उसे विष्णुदेव कहते हैं यह नाम भी उसके मुख्य नाम ओम् के साथ लग जाता है।

संबंध – यह विष्णुदेव मेरा भी पालन कर्ता नियन्त्रक व मुझ में व्याप्य रहा है। सब परमात्मा का दिया हुआ ही मैं खाता हूँ उस खाये हुए का उसी के नियन्त्रण में रस रक्त, मांस, मेध, अस्थि, मज्जा, वीर्य आदि बनता है। अभी तक यह संबंध नही बना पाया था। मैं किसी को खिलाता था तो अपना मानकर और उससे अपेक्षा भी करता था कि वह मेरी प्रशंसा करे मेरी बात माने ऐसा न होने पर दुःखी होता था अब मैं अपना नहीं मानूँगा उसी परमेश्वर का दिया हुआ मैं भी खाता हूँ व खिलाता हूँ यही यर्थाथता भी है।

भाव – जिसका खाना चाहिये उसके ही गुण भी गाना चाहिये ।

वाणी को शुद्ध रखना चाहिये मैं वाणी से व्यर्थ वार्तालाप करता था, इससे कठोर भी बोलता था, असत्य भी कहता था, और अपने गुण व दूसरे के दोषों को कहता था अब वाणी का सुधार करूंगा। इससे परमात्मा के गुणगान करूंगा, मधुर बोलूंगा, सत्य बोलूंगा, किसी की निंदा नहीं करूंगा न अपनी प्रशंसा यथायोग्य ईश्वर के गुणों का ही कथन करूंगा। इस ज्ञान का ध्यान बनाकर इसे स्थिर करता हूँ। इस ध्यान से ही आगे व्यवहार में कर्म भी करूँगा तभी मेरा विष्णुदेव नामस्मरण सार्थक होगा। **यह योगाभ्यास से वैदिक नामस्मरण की पद्यति है।**

इसी प्रकार गायत्री आदि मन्त्रों को भी जपना है। उसकी भी संक्षिप्त विधि विदित कराते हैं –

सर्वप्रथम तो शान्त एकान्त देश में बैठकर मन को स्थिर करने वाला अभ्यास करना चाहिये। पश्चात् जैसे अभी एक–एक नाम का जप शब्द, शब्दार्थ, संबंध व भाव से किया वैसे ही गायत्री मन्त्र का भी करना इसको थोड़ा समझ लेवे–

नाम शब्द है बीज, शब्दार्थ है बीज को बोकर फसल बनाना, संबंध है उसकी रक्षा करना जैसे अन्न से कचरा निकाल देना शुद्ध अन्न को रखना, भाव है उस अन्न को खाना व उससे पुष्ट होना। इसी को ऋषियों ने चार कर्मों में विभक्त करके बताया है–

1. श्रवण कर्म – उच्चारण करते हुए श्रवण करना और कोई दूसरा कार्य न करना–
2. मनन कर्म – जो सुना है उस पर मन से विचार करना अर्थात् उस शब्द के अर्थ को विचारना।
3. निदिध्यासन कर्म – जो बोला है सुना है व जिस के अर्थ को विचारा उसका मेरे साथ क्या संबंध है उसको जानना व उस संबंध का बुद्धि पर निश्चय बनाना।
4. साक्षात्कार कर्म – जो बोला है सुना है जिसके अर्थ को विचारा

है व उससे संबंध बनाकर बुद्धि पर निश्चय बनाया है उस ज्ञान को स्थिर करके व्यवहार में आचरण रूप क्रिया में लाना साक्षात्कार हैं उसका अनुभव भाव है।

सर्वप्रथम लम्बे स्वर से गायत्री मन्त्र के एक – एक शब्द का उच्चारण करना और जो ध्वनि हो उसी पर रहने का अभ्यास करना होगा।

दूसरे अभ्यास में शब्द का उच्चारण करना और उस शब्द के अर्थ को मन में बोलना । जो लम्बे स्वर से उच्चारण करते हैं उसमें जो समय बचता है उस काल में मन से शब्दार्थ को बोलना होता हैं।

तीसरे अभ्यास के समय में शब्द, शब्दार्थ के साथ ही उससे स्वयं का संबंध स्थापित करना होता है।

चौथे अभ्यास में उस संबंध को जानकर मुझे क्या व्यवहार बनाना है उसको विचार करना उसका निश्चय करना। उस ज्ञान का ध्यान बनाना और व्यवहार काल में वैसा ही करना है यही भाव बनाना।

ऐसा अभ्यासी व्यक्ति जब व्यवहार काल बनाये हुए ज्ञान के अनुसार आचरण रूप क्रियात्मक व्यवहार करता है तो उस नामस्मरण जप का पूर्ण लाभ प्राप्त करता है।

धीरे–धीरे अभ्यास होने पर बाह्य उच्चारण न करके भी मानसिक स्तर पर सब काम किया जा सकता है। अब गायत्री मन्त्र व उसके शब्दों का अर्थ आर्य भाषा में लिखते हैं। मन्त्र इस प्रकार है –

ओम् (यजु. अ. 40। म. 17)

भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात्।। (य.अ. 36 मं. 3)

शब्दार्थ व सम्बंध –

ओम् – यह परमेश्वर का मुख्य नाम है इस नाम के साथ अन्य सभी नाम लग जाते हैं।

सम्बंध – परमात्मा के साथ हमारे अनेकों सम्बंध हैं और अनेकों गुण हैं। उसमें से कोई एक गुण और कोई एक सम्बंध अपने साथ बनाना जैसे वह परम पिता है तो मेरा भी पिता है, वह परम दयालु है इस दया गुण के साथ अपना सम्बंध भी बनाना।

भूः – प्राणों का भी प्राण।

सम्बंध – मेरी नासिका में जो प्राण मैं लेता और छोड़ता हूँ उसका डालने वाला यहाँ और कोई नहीं है जिस वायुमंडल में से प्राणों को मैं लेता हूँ उस वायुमंडल का बनाने वाला भी यहाँ कोई व्यक्ति, मनुष्य आदि प्राणि नहीं है तो प्राणों को डालने वाला , वायुमंडल को बनाने वाला परमेश्वर ही है मेरे शरीर में भी उसी ने प्राण डालें हैं।

भुवः – सब दुःखों से छुड़ाने वाला।

सम्बंध – संसार में कोई भी ऐसा नहीं है जो मेरे समस्त दुःखों को दूर कर दे, परमेश्वर जरा, व्याधि, मरण दुःख को भी दूर करने वाला है मुझे भी ये दुःख आयेंगे एक मात्र वही इसे छुड़ा सकता है।

स्वः – स्वयं सुख स्वरूप व अपने उपासकों को सब सुखों का देने वाला।

सम्बंध – यहाँ कोई भी प्राणि, मनुष्य, पदार्थ सुख स्वरूप नहीं हैं किसी की भी उपासना करूँ वह मुझे पूर्ण तृप्त नहीं कर सकता। मैं पूर्ण तृप्ति वाला सुख चाहता हूँ अतएव परमात्मा ही मेरी इच्छा को सिद्ध कर सकता हैं।

सवितुः – सब सृष्टि को उत्पन्न करने वाला, सूर्यादि प्रकाशकों का भी प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्य का दाता।

सम्बंध – मेरा शरीर, मेरी बुद्धि और अन्य ऐश्वर्य के जो साधन हैं

इन सबका स्वामी एक मात्र परमेश्वर है। यह शरीर बुद्धि व सामग्री उसी की है।

वरेण्यम् – अतिश्रेष्ठ धारण व ध्यान करने योग्य ।

सम्बंध – उपरोक्त श्रेष्ठ गुणों से युक्त परमेश्वर का ही अपने लिये वरण करता हूँ क्योंकि उसके समान वा उससे बड़ा कोई नहीं हैं।

भर्गः – समस्त क्लेशों को भस्म करने वाला, पवित्र व शुद्ध स्वरूप।

सम्बंध – अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन क्लेशों को मैं भोगता हूँ एकमात्र परमेश्वर ही इन्हें भस्म कर सकता है और मुझे भी पवित्र व शुद्ध बना सकता है।

देवस्य – कामना करने के योग्य, सर्वत्र विजय कराने वाला।

सम्बंध – सर्वश्रेष्ठ होने से मेरे लिये वही एकमात्र कामना करने योग्य है क्योंकि सर्वत्र विजय प्राप्त कराने में समर्थ हैं।

तत् धीमहि – उस परमात्मा के स्वरूप को हम धारण करें।

सम्बंध – उपरोक्त गुणों को धारण करूँगा।

यः – जो सविता देव परमात्मा।

सम्बंध – ऐसे गुण वाला परमेश्वर।

नः – हमारी

धियः – बुद्वियों को

प्रचोदयात् – बुरे कामो से छुड़ाकर अर्थात् मलिन गुण कर्म स्वभाव से हटाकर उत्तम गुण स्वभाव में नियुक्त करे।

अभ्यास की रीति भाव –

ओम् – परमेश्वर मेरे पिता हैं मै उनका पुत्र हूँ जैसे वे सबका पालन वृद्धि और रक्षा करते हैं उसके बदले किसी से कुछ नही चाहते। दयालु हैं मैं भी अपने पिता के

स्वभाव को धारण करके किसी से कोई अपेक्षा नहीं रखूँगा।

भूः – ये प्राण शरीर व संसार परमात्मा ने मेरे कर्मों के फल के रूप में दिया है साथ ही वेद ज्ञान भी दिया है और कहा है कि जो मेरी आज्ञानुकूल इन प्राणों की रक्षा करेगा उसको मैं स्वस्थ रखूंगा, जो विपरीत आचरण करेगा उसको रोगी बना दूंगा। अतः प्रथम मेरा कर्त्तव्य है कि इन प्राणों को दूषित न करूं अर्थात् किसी प्रकार का भी धूम्रपान नहीं करूंगा, वायुमण्डल में अशुद्धि न फैलाऊँ। इन प्राणों को पुष्ट करने के लिये प्रतिदिन ब्रह्म मुहुर्त में उठा करूं, नित्य कर्म कर शुद्ध वायु का सेवन करने के लिये भ्रमण, प्राणायाम करूं। फिर भी अनिवार्य रूप से मेरे द्वारा वायुमण्डल में मलिनता जाती ही है। अशुद्ध प्राण छोड़ता हूँ, मल, मूत्र, पसीने आदि से भी अशुद्धता फैलाता हूँ, अतः होम हवन इतना अवश्य करूं जिससे कम से कम मेरे द्वारा फैलाई गई अशुद्धता नष्ट हो जावे।

भुवः – मैं अकारण किसी को भी दुःख नहीं दूँगा सभी से प्रीतिपूर्वक व्यवहार करूँगा। दूसरों के दुःखों को हटाऊँगा।

स्वः – जो परमात्मा के द्वारा प्रदत्त सुख साधन हैं उनसे अन्यों को भी सुख प्राप्त कराऊँगा और आपकी उपासना की ओर प्रेरणा करूँगा।

सवितुः – यथायोग्य उत्पादक कार्यो को करते हुए ज्ञान और ऐश्वर्य को बढ़ाकर अन्यों के बढ़ाने में सहयोग करूँगा।

भर्गः – मैं क्लेशों को नहीं बढ़ाऊँगा विद्या को धारण कर उन क्लशों को हटाऊँगा चित्त को शुद्ध पवित्र रखूँगा और अन्यों को भी इसमें सहयोग दूँगा।

देवस्य – मैं और किसी से कोई कामना नहीं रखूँगा अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न होकर अन्यों की भी उन्नति करूँगा।

धीमहि – जो ज्ञान पूर्वक उपरोक्त गुणों को मैंने कहा है जो भाव निर्मित हुए हैं उसे ध्यान से अपने में धारण करता हूँ।

इस प्रकार ज्ञान बनाना इसको स्थिर करने के लिये ध्यान करना उसका बुद्धि पर निश्चय करना पश्चात् वैसा ही करना तब ही भावना का चरितार्थ होगा व जप का पूर्ण फल भी बनेगा। यही जप ईश्वर भक्ति है।

इसी प्रकार अन्य शब्दों के साथ भी संबंध व भाव बनाना तब ही जप का यथार्थ लाभ होता है।

सर्वप्रथम जो भी ईश्वर का गुण वाचक वा संबंध वाचक नाम लेते हैं उसका अर्थ जानना चाहिये। उस अर्थ के साथ अपना संबंध स्थापित करना चाहिये पश्चात् उस गुण को स्वयं में धारण करना उससे विपरीत कोई अवगुण है तो उसे छोड़ने का निश्चय बनाना भाव है व तदनुकूल व्यवहार करना भक्ति है।

वेदादि सत्य ग्रन्थों के आधार तथा ऋषि महर्षियों ने जो बताया है उसके अनुसार भी व तर्क, युक्ति से भी यही यथार्थ जपविधि सिद्ध होती है। ऐसा करके प्रभु कृपा से सभी लाभान्वित हों व अन्यों को लाभ देवें।

ओम् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।।

ओ३म्

रोग शोक अज्ञान क्यों ? और निवारण कैसे ?

शरीर में व्याधि तभी होती है जब प्रतिरोधक शक्ति घट जाती है। इसका घटना तभी होता है जब शरीर से आवश्यक व हितकारी श्रम नहीं किया जाता, अतः विवेक पूर्वक शरीर से श्रम करने पर प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाकर रोगरहित रहा जा सकता है।

मन में जब शोक प्रवेश करता है वह क्षोभ युक्त हो जाता है, शोक प्रवेश का कारण मन में विषयों के प्रति राग का होना होता है। जब मन से विवेक पूर्वक आवश्यक व हितकारी विचारों का चिंतन व मनन किया जाता है तो शोक प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। उससे क्षोभ की मात्रा भी घटती है। जिसका परिणाम मन शोक से ग्रसित नहीं होता।

बुद्धि में जब अविद्या के संस्कार होते हैं तो राग और द्वेष का निर्माण होता है। राग द्वेष से ग्रस्त होने पर 'अज्ञान' की वृद्धि होती है। जब 'विद्या' से युक्त निर्णय बुद्धि से किए जाते हैं तो राग द्वेष घटते हैं। राग द्वेष के घटने से बुद्धि में प्रतिरोधक शक्ति का उदय होता है, जिससे अज्ञान का प्रवेश न होकर विद्या बढ़ती है।

बुद्धि के विद्यायुक्त होने पर उसका मन पर प्रभाव पड़ता है, जिससे मन शोक रहित होता हुआ प्रसाद को प्राप्त करता है। प्रसादयुक्त मन रहने से शरीर स्वस्थ रहता है अतः ज्ञान सर्वोत्तम है पर शरीर का भी प्रभाव यथायोग्य मन व बुद्धि पर पड़ता है, अतः शरीर का भी ध्यान रखना चाहिए। शरीर का ध्यान ज्ञान बढ़ाने के लिए रखना है। इसकी स्मृति अवश्य रखनी है तभी रोग शोक व अज्ञान से छूट कर निरोग, प्रसाद व ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है।

अमृत-वाणी

१. दुःख चाहो दुःख बांटो, सुख चाहो सुख बांटो, जिसे सम्भालोगे वही बांटोगे।

२. वैदिक विचार–सुख के लिए ईश्वर, कार्यसिद्धि के लिए संसार, अर्थात साध्य है ईश्वर एवं साधन है संसार।

३. विरक्ति क्या है–विशेष ज्ञानपूर्वक वस्तु के अवगुणों को जानकर, उसे छोड़ना, उस वस्तु से विरक्ति है।

४. त्याग किसे कहते है–कुछ देकर ही कुछ पाया जाता है, विज्ञानपूर्वक वस्तुओं के मूल्यों को जानकर बहुमूल्य वस्तु का ग्रहण करना तथा कम मूल्यवान का छोड़ना इसे ही त्याग कहते है।

५. सामान्य जन ईश्वर से चाहते है ईश्वर को नहीं चाहते।

६. गुणों का साक्षात् ही गुणी (पदार्थ) का साक्षात् है।

७. कृत्वित्व से अस्तित्व का बोध होता है।

८. समस्त क्लेशों का मूल अविद्या है, समस्त यम–नियमों का मूल अहिंसा है, समस्त कर्म–काण्डों का मूल धर्म है।

६. संसार को प्रभावित करने की इच्छा ही संसार से प्रभावित होने के रूप में आती है।

१०. पशु पेट के लिए खाते है, मूर्ख स्वाद के लिए खाते है, चतुर खाता है आरोग्य और शक्ति के लिए, संत खाता है केवल साधना के लिए।

११. सब परिस्थितियां अनिश्चित हैं, यही निश्चित है सब संसार अस्थिर है यहीं कथन स्थिर है, सब मनुष्य अविश्वसनीय है, यही विश्वास है।

नाम :
स्वामी अमृतानन्द [illegible]रस्वती

जन्म तिथि [illegible]
२५.१०.१९[illegible]

जन्मस्थान :
ग्राम दुदवास, जिला खण्डवा, (मध्यप्रदेश)

शिक्षा :
डिप्लोमा-मैकॅनिकल इंजीनियरिंग खण्डवा

विद्यावाचस्पति :
दयानंद ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

कार्य : ५ वर्ष तक आर्मी में इंजीनियर, उसके [illegible]चात ३ वर्ष वेद व संस्कृत अध्ययन, १० वर्ष तक [illegible] गुरुकुल होशंगाबाद, मध्यप्रदेश में आचार्य।

पश्चात् पिछले कई वर्षो से योग साधना शिविरों का आयोजन पूरे भारत वर्ष के कई प्रांतों व कई जिलों में करके कई लोगो के जीवन में योग का प्रकाश कर उनके जीवन को उन्नत बनाया है।

वर्तमान में जमानी (इटारसी) में आश्रम का निर्माण कार्य चल रहा है, जहां साधना केन्द्र, वानप्रस्थ आश्रम, यज्ञशाला व गौशाला का निर्माण कार्य होगा। इसके निर्माण कार्य के पश्चात यहीं पर स्थायी रूप से साधना के लिये समर्पित रहेगें।